ISSN 2278-5256 Kala Drishti

Annual Volume No. 8
2019-2020

Kala Drishti

A Peer Reviewed National Research Journal of Music, Art & Literature

Chief Editor
Dr. Shraddha Anilkumar
Principal

Editor
Dr. Monali J. Masih
Asst.Professor

Published By :
DEPARTMENT OF MUSIC
Dayanand Arya Kanya Mahavidyalaya
Jaripatka, Nagpur-440 014.
Ph.: 0712-2631350, E-mail : aryawani.ngp@gmail.com

ISSN 2278 - 5256

Kala Drishti

Volume - 8

Year 2019 - 20

Chief Editor : **Dr. Shraddha Anilkumar**
Principal
Dayanand Arya Kanya Mahavidyalaya, Nagpur.

Editor : **Dr. Monali J. Masih**
Assistant Professor
Dayanand Arya Kanya Mahavidyalaya, Nagpur.

Sub-Editors : **Prof. Anita Sharma (HOD)**
Assistant Professor
Dayanand Arya Kanya Mahavidyalaya, Nagpur.

Prof. Varsha Agarkar
Assistant Professor
Dayanand Arya Kanya Mahavidyalaya, Nagpur.

-:: Advisory Board :: -

Dr. Aparna Agnihotri
H.O.D. - Music Department
Vasantrao Naik Institute of Arts
& Soc. Sci., Nagpur.

Dr. Nilima Chapekar
H.O.D. - Music (Retd.)
Devi Ahilya Vishwavidyalaya,
Indore. (MP)

Dr. Snehashish Das
H.O.D. (Music),
Mahila Mahavidyalaya, Amravati.
Chairman (B.O.S.) Sant Gadgebaba
Amravati University.

Prof. Jiwankumar Masih
H.O.D. (Retd.)of English
Nabira Mahavidyalaya,
Katol.

Dr. Sunilkumar Navin
Principal
Associate Professor in English
Nabira Mahavidyalaya, Katol.

Dr. Deepak Kumar Mittal
Assistant Professor,
(Zoology) (Ph.D in Music)
Shri Satya Sai University of Technology
& Medical Sciences, Bhopal.

- Subscription -
Institutional ₹ **1000/-** (Annual)
Individual ₹ **700/-** (Annual)

-:: Published By ::-
DEPARTMENT OF MUSIC
Dayanand Arya Kanya Mahavidyalaya,
Jaripatka, Nagpur - 440 014.
Ph. : 0712-2631350
E-mail : aryawani.ngp@gmail.com

ISSN 2278 - 5256

Kala Drishti

Volume - 8 **Year 2019 - 20**

Published By : **DEPARTMENT OF MUSIC**
Dayanand Arya Kanya Mahavidyalaya,
Jaripatka, Nagpur - 440 014.
Ph. : 0712-2631350
E-mail : aryawani.ngp@gmail.com

Advertisement : Full Page Colour - ₹ **2500/-**
Full Page B/W - ₹ **1200/-**
Half Page B/W - ₹ **600/-**

Subscription : Institutional ₹ **1000/-** (Annual)
Individual ₹ **700/-** (Annual)

DD / Cheques should be sent in favour of
"The Principal, Dayanand Arya Kanya Mahavidyalaya,
Jaripatka, Nagpur(MS).

DISCLAIMER

The articles and other material that have been published in this issue do not reflect the views and ideas of the editors. The contributors are solely responsible for the views expressed and the material they have quoted in their articles.

ISSN 2278 - 5256

अनुक्रम

१)	संगीत, साहित्य और समाज	– डॉ. श्रध्दा अनिलकुमार नागपुर	१–३
२)	संगीत और संस्कार	– डॉ. वंदना खुशालानी नागपुर	४–५
३)	सम्पादकीय....	– डॉ. मोनाली मसीह नागपुर	६
४)	'ऑनलाईन प्रकाशन समय के साथ जुगलबंदी है	– डॉ. अमित वर्मा शान्तिनिकेतन,पश्चिम बंगाल	७–९
५)	मानसिक ताणतणावासाठी औषधोपचार : संगीत	– डॉ. अर्पणा अग्निहोत्री नागपुर	१०–१२
६)	'संगीत एवं योग द्वारा हमारे स्वास्थ्य पर प्रभाव	– प्रा. अनिता शर्मा नागपुर	१३–१५
७)	'संगीत कला के महान तपस्वी' स्व श्री प्रभाकरराव खर्डेनविस	– प्रा. वर्षा आगरकर नागपुर	१६–१७
८)	'रागों का उगम स्त्रोत' (लोकधुनों में राग–तत्त्व)	– डॉ. साधना शिलेदार /क्षमा कावडे नागपुर	१८–२०
९)	मागील दशकातील तांत्रिक प्रगतीच्या संदर्भात भारतीय संगीत	– प्रा. स्वप्निल चाफेकर पुणे	२१–२६
१०)	आजच्या काळातील संगीत शिक्षण, शिक्षक आणि विद्यार्थी	– कु. श्रुती पांडवकर नागपुर	२७–२८
११)	संगीत – एक मनोवैज्ञानिक दृष्टि	– श्रीमती स्वतंत्र जैन भोपाल	२९–३०
१२)	संगीत के क्षेत्र में गज़लों का युग आकलन करणारी दृकभाषा–एक अभ्यास	– डॉ. राहुल भोरे भंडारा	३१–३३
१३)	शास्त्रीय संगीत, स्वर साधना	– डॉ. प्रमोद रेवतकर चंद्रपूर	३४–३६
१४)	संस्कृति साहित्य में विज्ञान	– हेमचन्द चन्दोला उत्तराखण्ड	३७–३८

१५)	ललित कला व संगीत कला	– गिरीश चंद्रिकापुरे नागपुर	३९–४०
१६)	''भारत में कला संस्कृति और मध्यकालीन कला के धार्मिक पहलू का अध्ययन"	– डॉ. करिश्मा कांबे नागपुर	४१–४६
१७)	रचनाओं का सांगीतिक विवेचना (संदर्भ–नंददास)	– डॉ. सुनील कुमार तिवारी भागलपुर	४७–५४
18)	रागांग प्रणाली तथा उसका उत्तर भारतीय संगीत में महत्व	– प्रा. डॉ. श्वेता वेगड भंडारा	५५–५८
19)	वैश्विकीकरण आणि भारतीय संगीत	– प्रा. डॉ. अस्मिता नानोटी भंडारा	५९–६३
20)	Noor	– Sunil Kumar Navin Katol	६४–६९
21)	प्रेमचंद की कथा – बडे बाईसाहाब और बडे घर की बेटी : विलेषण एवंम वर्तमान प्रसंगिकता	– डॉ.संयुक्ता थोरात नागपुर	७०–७३
22)	तमाशा लोककलेत स्त्री कलावंताचे योगदान	– प्रा. जगन्नाथ के. इंगोले अमरावती	७४–७६
23)	Philosophical contribution of Rashtrasant Prayers for National Integration	–Prof. Bhavik Maniyar Bharsingi	७७–७९
24)	संगीत : एक स्रोत सच्चिदानन्द का	– डॉ. रोज़ी श्रीवास्तव बीकानेर।	८०–८३

ISSN 2278 - 5256

आर्य विद्या सभा

श्री अशोक कृपालानी
अध्यक्ष

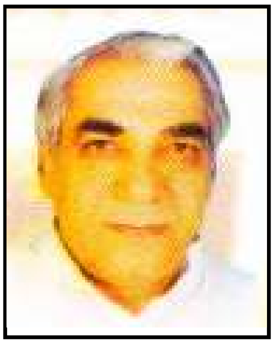

श्री घनश्यामदास कुकरेजा
उपाध्यक्ष

श्रीमती दीपा लालवानी
सचिव

श्री वेदप्रकाश वाधवानी
सहसचिव

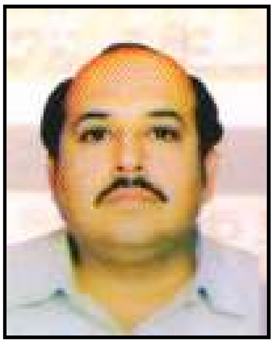

श्री भूषण खूबचंदानी
कोषाध्यक्ष

श्री दयाराम केवलरामानी
सदस्य

डॉ. अभिमन्यु कुकरेजा
सदस्य

श्री लालचंद लखवानी
सदस्य

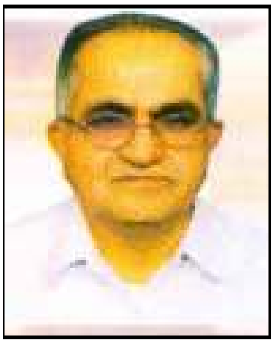

श्री करमचंद केवलरामानी
सदस्य

संगीत, साहित्य और समाज

मुख्य संपादक
डॉ. श्रद्धा अनिलकुमार
प्रिंसीपल
दयानंद आर्य कन्या महाविद्यालय,
जरीपटका, नागपुर.

आधुनिक तकनीकी युग में समाज में बड़ी तेजी से बदलाव आ रहा है। उसमें कलाओं को बचाकर रखना, उसकी बारीकियों को उसकी संपदा को, उसके स्वाद और उसके आनंद को संजोकर रखना दुष्कर कार्य हो गया है। जिस संस्कृति पर हम गर्व करते हैं, उस संस्कृति को बचाकर रखना भी मात्र कलाकारों की ही जिम्मेदारी नहीं बल्कि हम सब आम जनता की भी है। आज हम देख रहे हैं कि दिनोंदिन परिवार, समाज की संरचना शिथिल होती जा रही है। स्पर्धा की मानसिकता बढ़ रही है। ऐसे में समता और भाईचारे की भावना सिर्फ ललित कलाएँ ही ला सकती हैं। ललित कलाओं में भी मेरी दृष्टि से संगीत ही महत्त्वपूर्ण है क्योंकि संगीत ही वह ललित कला है । संगीत एक सम्मोहन विद्या है। सहज आनंद की अनुभूति है, जीवन का एक छलकता सुहाना छंद है संगीत।

जहाँ व्यक्ति सब कुछ भूलकर अपने को सहजानंद की स्थिति तक पहुँचा देता है। जिसके द्वारा संगीतज्ञ स्वयं आनंदित होकर दूसरों को भी आनंदित करने का प्रयास करता है। संगीत ही एक ऐसी कला है जो मनोरंजन के साथ–साथ ब्रम्हानंद की अनुभूति कराने में सर्वथा सक्षम है। इस कला में गायन, वादन तथा नृत्य इन तीनों कलाओं का भी समावेश होता है। इन तीनों में भी गायन प्रधान है। इस कथन की पुष्टि निम्नांकित श्लोक से होती है।

गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते।
नृत्यं वाद्यानुगं प्रोक्तं वाद्यं गीतानुवृत्तिच।।

संगति शब्द का अर्थ है 'सम्यग् रूपेण गीयते इति संगीतम् अर्थात सब प्रकार से गाया जाय उसे संगीत कहते है। संगीत के इतिहास में पूर्व पृष्ठों की ओर दृष्टि डालें तो यह विदित होता है कि प्राचीन शिक्षा प्रणाली की विधि आधुनिक शिक्षा प्रणाली से पूर्णतया भिन्न थी। उस समय गुरू–शिष्य परंपरा थी और गुरू एक नियमित समय अपने शिष्य को शिक्षा दान करते थे। उस समय क्रियात्मक रूप से गुरू स्वयं गाकर शिष्यों द्वारा उन्हीं स्वरों को निकलवाकर उन पर उन्हें मनन करने का समय दे देते थे। जब तक उनका स्वरज्ञान पूर्णरूपेण परिपक्व न हो जाता था वे आगे नहीं बढ़ते थे। लेकिन आजकल परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं जिससे संगीत सीखाने और सीखने की पद्ध ाति में भी बहुत अंतर आया है। आजकल विद्यार्थियों का दृष्टिकोण केवल परीक्षाएँ पास करने के पाठ्यक्रम तक संकुचित हो गया है। इसके बावजूद भी आज आधुनिक काल की इक्कीसवीं सदी में भी संगीत का विशिष्ट महत्व है। संगीत का मानवजीवन, सामाजिक जीवन, साहित्य, सौंदर्यशास्त्र और विविध शास्त्रों से अटूट संबंध है जिसे निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर और अधिक समझा जा सकता है।

संगीत और मानव जीवन – मानव–जीवन संगीत से ओत–प्रोत है। मानव–जीवन सदा संगीत से अनुप्राणित होता है। संगीत में मानव–जीवन की सभी जटिल समस्याओं का निराकरण करने की क्षमता है। संगीत मानव–जीवन को नैतिक कर्तव्यों की ओर उन्मुख करता है। संगीत में मानव के

मनोगत भावों को सजीव और साकार रूप देकर उसे अत्यंत आकर्षक रूप प्रस्तुत करने की क्षमता है। संगीत से केवल मनोरंजन ही नहीं अपितु धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पदार्थो की प्राप्ति होती है। किसी आचार्य ने संगीत कला के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए सच ही कहा है –

साहित्य संगीत कला विहीनः।

साक्षात् पशु पुच्छ विषाण हीनः।।

अर्थात् जो मनुष्य साहित्य और संगीत कला से सर्वथा अनभिज्ञ होता है, वह बिना सींग और पूंछ के साक्षात् पशु के तुल्य होता है। क्योंकि संगीत स्वयं रसमय है तथा परमानुभूति रस की चरमसीमा है। संगीत में वह शक्ति है जो देशकाल तथा परिस्थिति की संकीर्ण सीमा रेखा को तोड़ देती है।

संगीत और साहित्य – हमें ऐसा लगता है कि संगीत एक स्वतंत्र कला है लेकिन जब वह किसी साहित्य से संपृक्त होती है तो उसका उत्कर्ष और भी बढ़ जाता है क्योंकि संगीत और साहित्य दोनों का उद्देश्य है वैयक्तिक, सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक उत्थान। जो कार्य मानव–जीवन के लिए साहित्य करता है वही कार्य संगीत भी करता है। संगीत साहित्य के अर्थ को व्यक्त करने में सहायक होता है और साहित्य हमें वीर और रौद्र रस की कविता प्रदान करता है तो संगीत वीर–रस को उद्दीप्त करने के लिए तदनुकूल स्वर समुदाय को प्रदान करता है।

साहित्य के भावों और रसों को मुखरित करने में संगीत का विशेष हाथ रहता है। इसलिए सूर, तुलसी, मीरा और कबीर आदि भक्त कवियों ने अपने भक्ति साहित्य का प्रचार संगीत के माध्यम से किया था।

संगीत और स्वास्थ्य – संगीत साधना एक प्रकार का व्यायाम है जिससे शरीर को स्वास्थ्य और मन को प्रसन्नता प्राप्त होती है। संगीत से संगीतकार को वही लाभ होता है जो एक व्यक्ति को यौगिक क्रिया करने से होता है। जिस तरह योग से चित्त की वृत्तियों का निष्कासन होता है। उसी प्रकार संगीत से भी चित्त एकाग्र हो जाता है और शरीर स्वस्थ रहता है।

संगीत और समाज – मेरी दृष्टि से संगीत और समाज का घनिष्ठ संबंध है। एक जिसतरह एक संगीतज्ञ अपने कला के सृजन द्वारा समाज में मानवीय मूल्यों को प्रस्थापित करने के लिए प्रयासरत रहता है जिससे वह अप्रत्यक्ष रूप से अपने व्यक्तिगत जीवन को ही उत्कृष्ट बनाकर सामाजिक जीवन को सफल बनाता है। संगीत में वह सामर्थ्य है जो सामाजिक प्राणियों में नैतिकता की भावना को जगाता है। संगीत में समाज की आर्थिक दशा सुधारने की क्षमता है, संगीत में वह शक्ति है जो सामाजिक प्राणियों में दया, परोपकार, सह्रदयता, सहानुभूति की भावना को उत्पन्न करती है। संगीत की व्यापकता को समझने का प्रयास किया जाए तो संगीत से मानवजाति और समाज का ही नहीं अपितु समस्त देव गंधर्व और किन्नर आदि या कहना चाहें तो संपूर्ण जगत को भी आनंद की अनुभूति होती है।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि संगीत में रस और भाव की प्रधानता रहती है अर्थात रसात्मकता ही संगीत का प्राण है और रसमय वातावरण की सृष्टि करना ही संगीत का एकमात्र उद्देश्य है। इस तरह हम देखते हैं कि संगीत की अखंडता, व्यापकता एवं महत्ता साहित्य, समाज एवं मानवजाति में ही व्याप्त नहीं है बल्कि संपूर्ण सृष्टि में व्याप्त है। विभिन्न शास्त्रों (विज्ञान, मनोविज्ञान, इतिहास, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र) कलाओं (काव्यकला, चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तुकला, संगीतकला) से प्राणीजगत से संलग्न है। उदा. सर्प, मोर तथा मृग आदि जंतु सुंदर से सुंदर काव्य, चित्र, मूर्ति तथा वास्तु आदि कलाओं से प्रभावित नहीं होते किंतु संगीत की

मधुर ध्वनि सुनकर वे मुग्ध हो जाते है। इस तरह अब संगीत क्षेत्र सीमित न होकर सार्वभौमिक हो गया है। आधुनिक युग में तो छोटे–बड़े सभी संगीत कला के प्रेमी हो गए है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि संगीत एक ऐसी विद्या है जिसमें प्रतिभा व संस्कार के साथ–साथ बहुत बड़े त्याग, तप और परिश्रम की आवश्यकता पड़ती है। संगीत से आत्म तुष्टि के साथ–साथ पारलौकिक संतुष्टि भी प्राप्त होती है। यह वह विद्या है जिसके द्वारा संगीतज्ञ स्वयं प्रसन्नचित रहकर दूसरों को भी सदा प्रसन्न रखने का प्रयत्न करता है।

संदर्भ –

१. राष्ट्रीय एकता में संगीत की भूमिका डॉ. सत्या भार्गव, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली.
२. संगीत शिक्षण के विविध आयाम–डॉ. कुमार ऋषितोष कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली.
३. हिंदुस्तानी संगीत में तंत्र वादकों का योगदान – श्रीमती बीना शर्मा, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली.

अतिथि संपादक
डॉ. वंदना खुशालानी
सल्लाहगार
आर्य विद्या सभा,
जरीपटका, नागपुर.

संगीत और संस्कार

दुष्यंत कुमार की एक गजल है, कुछ पंक्तियां दृष्टव्य हैं –

''कैसे मंजर सामने आने लगे हैं
गाते गाते लोग चिल्लाने लगे हैं
जिस तरह चाहो, बजाओ इस सभा में
हम नहीं हैं आदमी, हम झुनझुने हैं।।''

भारत देश में दुर्भाग्य एवं विडबंना की बात है कि कई पारंपरिक वाद्य जो पहले बजाते थे, आज उनमें से कई दयनीय दशा को प्राप्त हो गए हैं जिसका एक कारण पाश्चात्य संगीत द्वारा लोगों के ह्रदय में जगह बना लेना है। आज उन विलुप्त साज बजाने वालों को उजागर करने की आवश्यकता है, ताकि देश की संस्कृति की जीवंतता बनी रहे। घूम–घड़ाका, चीख–चिल्लाहट का नाम कर्कशता है, भीषणता है पर संगीत नहीं। वैज्ञानिक इस कानफाड़ संगीत को ध्वनि प्रदूषण व कोलाहल मानते हैं। संगीतप्रेमी कहते है कि संगीत अच्छा या बुरा नहीं हो सकता, उसका मन पर सकारात्मक ही प्रभाव पड़ता है किंतु यह संगीत के प्रति सही दृष्टिकोण नहीं है। सुर–ताल तथा लय की सर्मान्विति यदि मधुर एवं प्रेरणादायक है तो वह ह्रदय को आकर्षित करता है अन्यथा अरूचि का कारण भी बन सकता है। प्रारंभ में समाज उसके प्रति सचेत नहीं होता, नएपन के कारण यह अटपटा संगीत उसे लुभाता है पर धीरे– धीरे यह संगीत पर विपरीत प्रभाव डालता है। ऐसा नकारात्मक संगीत आजकल युवामन को बेकाबू बना रहा है और उसकी तीव्रता युवाओं की धमनियों के रक्तप्रवाह की गति को बढ़ाकर उन्हें उच्च रक्तचाप तथा हिंसक प्रवृत्तियों की ओर ले जा रही है। यह तीव्र, उत्तेजना पैदा करनेवाला संगीत उन्हें असामाजिकता की ओर ले जा रहा है। किशोर तथा युवा डिप्रेशन और अवसादग्रस्त हो रहे हैं।

व्यक्ति संगीत अपने अवकाश के क्षणो में सुकून पाने के लिये सुनता है। शोधकर्ताओं में प्राय: निष्कर्ष निकाला है कि अनजाने में तीव्र गति व शोर शराबे वाले संगीत से किशोर ड्रग्स तथा नशे की ओर खिंचकर पतित हो रहा है। संगीत का लक्ष्य 'सत्यं शिवम् सुंदरम्' हैं तब वह शिकेत्तर या अशिवकारी कैसे हो सकता है। यह तीव्र संगीत उकसानेवाला तथा भड़काऊ होने से भोगप्रवृत्ति की ओर ले जाता है तथा अधिकतर यह पाया गया है कि इस गीत संगीत के बोल भी नारीशक्ति के प्रति अभद्र होते हैं। कई अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकला है कि जिस युवा वर्ग को हम तेजस्वी बनाकर श्रेष्ठ स्तर पर ले जाना चाहते हैं, उनकी मानसिकता इस प्रकार के गायन–वादन से विकृत हो रही है। यह कर्ण भेदी संगीत ह्रदय की धड़कनों को बढ़ाता है, कर्ण तंत्रिकाओं पर विपरीत कसर डालता है। शरीर में तनाव उत्पन्न कर एकाग्रता का क्षय, सिरदर्द जैसे विकार उत्पन्न कर रहा है। इससे युवाओं की न केवल शारीरिक क्षमता घटती है बल्कि मानसिक व बौध्दिक क्षमता को भी शनै: शनै: कम कर देता है।

प्राय: मनोवैज्ञानिकों ने अपनी शोध में पाया है कि जो किशोर निरंतर ऐसी तेज धुने लगातार सुनता है, वह तनावग्रस्त विक्षिप्त नजर आता है। प्राय: मे तीव्र धुने विवाह समारोह, क्लब पार्टियों व डांस कार्यक्रम के अवसरों पर सुनें तब तक ठीक है पर जब वे किशोरों की दिनचर्या का संग बन जाती हैं, और सोते बैठते, जागते–पढ़ते हुये वह तेज संगीत के संपर्क में रहने लगता है तो उसका दुष्परिणाम शारीरिक

या मानसिक स्तर पर नजर आने लगता है। संगीत का उद्देश्य मनोरंजन व आनंद प्रदान करना तो है ही, साथ ही शांति व संतोष प्रदान करना भी है। हमारा मन खाली हो जाए, हृदय खोखला हो जाए तो स्पष्ट है कि उस नकारात्मक संगीत से दोस्ती करना हानिकारक है। अगर संगीत का प्रभाव व्यक्तित्व को संस्कारित करने, आत्मा को प्रेरित करने में नहीं हो रहा है और न ही कल्याणकारी उद्देश्य साध्य हो रहा तो निश्चित ही ये विकृत सुर है, हमें अपने सुरों की ओर लौटना होगा जो हमारी संस्कृति व विरासत के अंग है और अपनी जिम्मेदारी को पहचानते हैं।

संगीत एक ऐसी कला है जिसने भारतीय संस्कृति को जीवित रखने में अपनी अहम् भूमिका निभायी है। प्राचीन काल से कलाकारों ने लोकगीत, लोकनृत्य, शास्त्रीय गायन वादन के माध्यम से भारतीय संगीत को सुरक्षित रखा है। जीवन के विविध अवसरों एवं पर्व त्योहारों में हमारे मनोभाव को प्रकट करने का संगीत एक मुख्य माध्यम रहा है। मध्यकालीन हिंदुस्तानी संगीतज्ञों ने प्रत्येक राग को देवी देवताओं से संलग्न कर महत्त्वपूर्ण बना दिया जैसे रागभैरव को भगवान शिव, मेघ राग को भगवान विष्णु के साथ जोड़कर चित्रित किया है। संगीत जो एक अमूर्त कला है, उसे मूर्त करने के लिये चित्रकला के माध्यम से देवी–देवताओं की कथाओं को भी प्रस्तुत किया गया है। देवों की पूजा–अर्चना में भी संगीत का महत्त्वपूर्ण स्थान है। देवों को जगाने, उनका श्रृंगार करने व दैनिक कीर्तन करने में संगीत तथा गायन की पारंपारिक प्रथा है। बंगाल में तो शक्ति की आराधना की दिव्यतम अनुभूति तब तक नहीं होती जब तक ढाक वादन नहीं होता। ढाक एक लोकवाद्य है जिसे बजानेवाले को ढाकी कहते हैं। दुर्गापूजा के अवसर पर छोटे से छोटे पंडाल में भी माँ की आराधना ढाक की थाप के बिना अकल्पनीय है। मंत्रोच्चार के साथ ढाक के ताल बदलते रहते हैं, जानकार व्यक्ति ताल सुनकर बता सकते हैं कि दुर्गा पूजा की कौनसी विधि जारी है। कुछ ढ़ाकियों को देश ही नहीं विदेश में भी ख्याति प्राप्त हुई है। संगीत के कई वाद्यों जैसे सारंगी, तबला, पखावज मृदंग, सितार, शहनाई वादकों को अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई है। इन वादकों ने संगीत–सृजनात्मकता की असीम संभावनाओं को व्यक्त किया है। भारतीय संगीत के विविध आयोजनों द्वारा पीडित देश व मानवता हेतु भरपूर धनराशि भी जुटायी गयी तथा उनकी विकराल समस्या का निवारण करने हेतु दानस्वरूप प्रदान की गई है। संगीत की इस गौरवशाली घरोहर को विकसितकर ऐसे कई संगीत उत्सव आयोजित किए जा सकते हैं और मानव एकता की ज्योति जलायी जा सकेगी। संगीत की ताकत कम नहीं आंकनी चाहिये, वह लोगों की सोच बदल देता है, उनका व्यवहार बदल देता है। गायन की कई शैलियां है जिनमे से श्रृंगार तथा भक्ति को अभिव्यक्त करने वें बहुमुखी प्रतिमा संगीतकारों ने हासिल की है। संगीत की इस दिव्य परंपरा के कारण आज केवल पुरूष ही नहीं अपितु कई महिला संगीतकार मंच पर अपने सिध्द वाद्य को बजाती भी हैं तथा उत्कृष्ट गायन कर श्रोताओं को प्रभावित करती हैं। संगीत में अध्यात्म का जो भाव समाविष्ट है, उसने भारतीय संगीत को कला के उच्चतम स्तर तक पहुंचाया है।

जिस देश में कला व संगीत इतने उच्च स्तर पर पहुंचे हों, वहां कोई भी बाहरी संगीत स्थायी जगह नहीं बना सकता, वह हमारे कल्चर का रंग नहीं बन सकता। परिचय की शक्ति से प्रभावित होकर हमें अपने संगीत की जड बेदर्दी से नहीं काटनी है, यह संघभक्ति है। अपने अस्तित्व को बचाए रखने और अपनी संस्कृति को खोने से बचाने में हमारा अपना संगीत ही प्रेरणादायक है। अंतत: बालकवि बैरागी के शब्दों में –

''ओ मुझ पर मंडरानेवाले
मेरा मोल लगानेवाले
जो मेरा संस्कार बन गई
वो सौगंध नही बेचूंगा।।''

डॉ. मोनाली मसीह
असिस्टंट प्रोफेसर
दयानंद आर्य कन्या महाविद्यालय,
जरीपटका, नागपुर.
monalimasih@gmail.com

सम्पादकीय.......

कला दृष्टि’ – के सातवे अंक का प्रकाशन अत्यंत सफलतापूर्वक हुआ और आठवे अंक का प्रकाशन होने जा रहा है। हमें अत्यंत प्रसन्नता है और हम अपनी कृतज्ञता भी व्यक्त करते हैं कि हमारे संगीत प्रेमी, श्रोताओं, पाठकों एवं प्राध्यापक वृंद के प्रति कि उन्होंने कला–दृष्टि के लिए अपने लेख तो भेजे ही, साथ अपनी प्रतिक्रियाएँ भी लिख भेजीं। आप सभी संगीतज्ञों की शुभकामनाओं के लिए हम अत्यंत आभारी हैं और भविष्य में भी इस सहयोग की अपेक्षा करते हैं।

संगीत और साहित्य के माध्यम से आज के समाज में, बदले हुए माहौल में शायद जहाँ किसी को उतनी फुर्सत नहीं कि अपने ही आसपास के वातावरण को जाने या समझे, थोड़ा समय निकालकर खुद के लिए समाज के लिए कोई कार्य कर सके। कला के प्रति लोगों की जो खामोशी है, उदासीनता है वह निश्चित ही हमारी सालों से जतन की गई परम्परागत संगीत की धरोहर को खत्म कर देने की कगार पर ले जाएगी। आज आवश्यकता है कि हमारी शाश्वत परंपराओं, संगीत एवं साहित्य को जिनका गरिमामय इतिहास रहा है उनको और भी ऊँचाइयों पर ले जा सके और इसके लिए हम सदैव तत्पर एवं प्रयत्नशील रहें। किसी भी माध्यम से क्यों न हो हमें हमारी कोशिशों को अंजाम तक पहुँचाना जरूरी है चाहे वो चर्चा सत्र के माध्यम से हो, शास्त्रीय संगीत की बैठक हो, सम्मेलन हो। आज की युवा पीढी के समक्ष हमें जो ग्राह्य है, जो शाश्वत है, जो अच्छा है वह रखना जरूरी है तभी हम हमारी शाश्वत परंपराओं को, हमारे साहित्य को, हमारे शास्त्रीय संगीत की धरोहर को और भी ऊँचाईयों तक पहुँचा सकेंगे।

धन्यवाद।

ऑनलाईन प्रकाशन समय के साथ जुगलबंदी है.....
डॉ. अमित वर्मा

Dr. Amit Verma
Assistant Professor,
Visva Bharati University
Shantiniketan, W.B.
kr.amitverma@gmail.com

डॉ. अमित वर्मा भारतीय संगीत को समर्पित प्रथम ई–जर्नल के संस्थापक व संपादक है। आप वर्तमान में विश्व भारती विश्वविद्यालय, शान्तिनिकेतन में असिस्टेंट प्रोफेसर के पद पर कार्यरत है। आपने संगीत में पत्रिकाओं के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ा है, जिससे संगीत में लेख व शोध पत्र प्रकाशन को त्वति गति मिली है। आप संगीत शिक्षा एवं शोध के स्तर में सुधार करने व उसमे पारदर्शिता लाने के लिए निरंतर प्रयासरत है। कला–दृष्टि पत्रिका की सम्पादक डॉ. मोनाली मसीह से हुई बातचीत के कुछ अंश प्रस्तुत है।

डॉ. अमित जी, सबसे पहले मैं जानना चाहूँगी कि संगीत गैलेक्सी ऑनलाइन जर्नल का विचार आपके मन में कैसे आया।

इससे जुडी हुई एक छोटी सी मगर महत्वपूर्ण घटना है जो मै आपसे साझा करना चाहूँगा। एक बार मैंने संगीत की एक प्रतिष्ठित पत्रिका में अपना लेख प्रकाशन के लिए भेजा था। सम्पादक ने मेरा लेख पढ़कर मुझे फोन किया और लेख की तारीफ भी की। मैने उनसे आग्रह किया, अगर आपको लेख इतना अच्छा लगा है तो इसे अगले अंक में प्रकाशित कर दें। उन्होंने कहा – देखते है। मैं भी आश्वस्त हो गया कि अब लेख जल्दी प्रकाशित हो जाएगा। लेकिन करीब छह महीने गुजर गए और लेख का कोई अता पता नहीं था। मैंने उनको दुबारा फोन करके याद दिलाया तो उन्होंने कहा कि फाइल में लगा है जब आपका नंबर आएगा तो प्रकाशित हो जाएगा। खैर... ... मैं चुपचाप बैठ गया और करीब २ साल के लम्बे इंतजार के बाद मेरा लेख प्रकाशित हुआ, जबकि कुछ लेख नियमित रूप से प्रकाशित हो रहे थे, कैसे... मुझे पता नहीं। लेख प्रकाशित होने से मैं खुश भी था लेकिन मन में सवाल उठ रहा था कि क्या ऐसा कोई विकल्प है जिससे प्रकाशन के लिए लम्बा इंतजार न करना पड़े, क्योंकि ऐसी विलंबित प्रकाशन व्यवस्था से लेखकों का मनोबल कमजोर पड़ता है और उनका लेखन भी प्रभावित होता है। तो इस तरह से एक पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी और अब एक नए विकल्प की तलाश थी। इत्तिफ़ाक से मेरे एक मित्र अजय शर्मा, जो कि हमारी यूनिवर्सिटी में ही लाइब्रेरियन है , ने अपना ऑनलाइन जर्नल शुरू करने की सलाह दे दी। सलाह तो अच्छी थी लेकिन मैं ऑनलाइन जर्नल के बारे में कुछ जानता नहीं था। कुछ दिन चिंतन मनन के बाद सिलसिला शुरू हुआ इन्टरनेट पर अलग अलग विषयों के ऑनलाइन जर्नल के अध्ययन का.... और करीब ८–९ महीनों के अथक परिश्रम के बाद अक्टूबर २०१२ में संगीत गैलेक्सी पत्रिका का प्रथम अंक प्रकाशित हुआ और उसके बाद से ये सफर जारी है।

आपने संगीत में पत्रिकाओं के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ा है, आप संगीत में पत्रिकाओं के इतिहास को किस नज़र से देखते है? संगीत पत्रिकाओं ने संगीत के विकास में किस तरह अपना योगदान दिया है ?

गुजरे ज़माने में जब गुरू शिष्य परम्परा पर आधारित घरानेदार शिक्षण का कोई दूसरा विकल्प नहीं था, तब ये माना जाता था कि संगीत एक प्रदर्शनकारी कला है। संगीत मतलब सिर्फ गाना बजाना। इसमें पढ़ने लिखने की क्या जरूरत ? पढ़कर कहीं संगीत आता है, संगीत तो साधना की विषय वस्तु है और इसकी शिक्षा में शास्त्रीय अध्ययन और वैज्ञानिक

विवेचन की आवश्यकता ही नहीं है। संगीत तो सीना बसीना तालीम की चीज़ है, लेकिन २० वीं सदी आते समय और सोंच दोनों ने करवट ली। संगीत की संस्थाएं स्थापित हुई। संगीत शिक्षण की नीतियाँ बनी। पाठयक्रम निर्धारित किये गए और किताबे लिखी जाने लगी। संगीत को सुरक्षित और संरक्षित रखने के लिहाज से संगीत लिपियाँ प्रकाश में आई। जो संगीत अब तक परम्परागत तरीके से मौखिक रूप से प्राप्त होता था अब लिपिबध्द होने लगा था। इसी क्रम में संगीत पत्रिकाओं के प्रकाशन की शुरूआत हुई। पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी ने स्वयं १९०५ ई. में लाहौर से 'संगीतामृत प्रवाह' नामक संगीत पत्रिका प्रकाशित की थी। स्पष्ट है कि स्वतंत्रता पूर्व काल में ही संगीत लेखन के क्षेत्र में जागरूकता आ गई थी, जिसके फलस्वरूप कुछ संगीत पत्रिकाओं का प्रकाशन भी आरम्भ हो गया था। संगीत के क्षेत्र में सबसे लोकप्रिय पत्रिकाओं में हाथरस उत्तर प्रदेश से प्रकाशित 'संगीत पत्रिका' तथा अखिल भारतीय गन्धर्व मंडल मुंबई द्वारा प्रकाशित 'संगीत नाटक' और 'संगना', उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी से 'छायानट', मध्यप्रदेश कला परिषद की 'कलावार्ता', आई.सी.सी. आर की 'गगनांचल' आदि पत्रिकाओं ने संगीत के प्रचार प्रसार व उसके विकास में जो भूमिका निभाई है, वह अतुलनीय है। ये पत्रिकाएँ प्रकाश में आती रही लेकिन वो जुगनू की तरह रौशनी बिखेर कर थोड़े समय में अलविदा कह गई।

संगीत की इन पत्रिकाओं ने आम आवाम को एक सुनहरा मौका दिया, संगीत की उन शास्त्रीय बातों, उन परंपरागत नियमों व उन रहस्यों को समझने का, जो अब तक घरानों की मजबूत दीवारों में महफ़ूज़ थी और आम—आवाम के लिए नहीं थी। संगीत की पत्रिकाओं ने संगीतकारों, संगीत लेखकों व संगीत प्रमियों के लिए एक बौध्दिक एवं स्वतंत्र मंच के रूप में कार्य किया, जिस पर सभी को अभिव्यक्ति, आलोचना व समीक्षा का समान अधिकार मिला।

संगीत पत्रिकाओं के माध्यम से एक ओर संगीत के सैध्दांतिक पक्ष के साथ—साथ संगीत के क्रियात्मक पक्ष की जानकारी से संगीत समाज लाभान्वित हुआ तो दूसरी ओर संगीत के विभिन्न मुद्दों पर व्याप्त भ्रामक धारणाओं, विसंगतियों व त्रुटियों से संगीत समाज को अवगत करा उसके निराकरण के सुझााव प्रस्तुत किये गए. संगीत पत्रिकाओं में विभिन्न विद्वानों का संगीत सम्बन्धी मौलिक चिंतन प्रकाशित हुआ तो संगीत के क्षेत्र में हुए नवीन अनुसंधानों की जानकारी भी प्राप्त हुई। ख्याति प्राप्त संगीतकारों व विद्वानों के साक्षात्कारों के प्रकाशन के साथ—साथ संगीत जगत की समसमायिक सांगीतिक गतिविधियों की जानकारी भी संगीत पत्रिकाओं के माध्यम से जन—जन तक पहुंची। इसप्रकार हम देखते है कि स्वतंत्रता के पूर्वार्ध व उत्तरार्ध में संगीत पत्रिकाओं के माध्यम से संगीत के प्रचार प्रसार में बड़ी सहायता मिली।

आप अपनी संगीत गैलेक्सी ऑनलाइन पत्रिका के विषय में कुछ बताएं।

सबसे पहले मैं यह कहना चाहता हूँ कि यह पत्रिका मेरी नहीं है, यह पत्रिका संगीत की है और संगीत समाज के लिए है। मैं सिर्फ इसका सम्पादक हूँ, खैर.... जैसा आप जानते है कि किसी विषय में हुए समसामयिक विकास की सूचना हमें रिसर्च जर्नल के माध्यम से होती है। रिसर्च जर्नल्स हमें अपने विषय में अपडेट करते है और ये सूचना के प्रमाणिक स्त्रोत माने जाते है। जैसा कि अभी हमने चर्चा कि जो पत्रिकाएँ संगीत के प्रकाशन का कार्य कर रही है उनमे किसी लेख या शोध पत्र को प्रकाशित करने में एक लम्बा समय लग जाता है। अपने लेख के प्रकाशन के लिए इतने लम्बे समय तक इंतजार करने के कारण लेखक की रचनात्मक क्षमता पर भी बुरा असर पड़ता है। नई जानकारियाँ, नए अनुसंधान व नए विचार, जो लेखों के माध्यम से संगीत के पाठकों तक नियमित रूप से कम समय तकपहुच जाने चाहिए, उनमे विलम्ब होता है। इन सभी समस्याओं का तकनीकी, समयानुकूल व आधुनिक समाधान है—ऑनलाइन जर्नल या ई—जर्नल। प्रिंटजर्नल और ई—जर्नल की तुलना करें तो ई—जर्नल इंटरनेट के माध्यम से प्रिंट जर्नल की तुलना में एक ही समय में एक साथ एक बड़े

पाठक वर्ग तक पहुँ सकता है। प्रिंट जर्नल की तुलना में ई–जर्नल के प्रकाशन में बहुत कम समय, श्रम और धन का व्यय होता है। कोई प्रिंटिंग मूल्य नहीं लगता, प्रकाशन के बाद पत्रिकाओं वितरण की कोई समस्या नहीं रहती है। साथ ही बची हुई पत्रिकाओं के सुरक्षित संग्रह के लिए भी कोई खर्च नहीं करना पड़ता। स्पष्ट है कि ई–जर्नल या ऑनलाइन जर्नल आज की आवश्यकता है या यूं भी कह सकते है कि ऑनलाइन प्रकाशन समय के साथ जुगलबंदी है।

अगर आप इन्टरनेट पर खोजेंगे तो संगीत से सम्बंधित बहुत से ऑनलाइन जर्नल उपलब्ध है लेकिन इनमे से अधिकांश पाश्चात्य देशो से प्रकाशित है और पाश्चात्य संगीत पर केन्द्रित है। संगीत गैलेक्सी भारतीय संगीत को समर्पित एक ऑनलाइन जर्नल है, जो संगीत गैलेक्सी फाउंडेशन द्वारा प्रकाशित है।

इसका उद्देश्य संगीत के उच्च स्तरीय शोधपत्रों, लेखों आदि के त्वरीत प्रकाशन के लिए एक स्वतंत्र व बौध्दिक मंच प्रदान करना है। यह शोध पत्रिका संगीत के विभिन्न क्षेत्रों, उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत, दक्षिण भारतीय संगीत, लोकसंगीत आदि से मौलिक व अप्रकाशित लेख हिंदी व अंग्रेजी भाषा में प्रकाशन के लिए आमंत्रित करती है।

आपकी पत्रिका २०१२ से प्रकाशित हो रही है। विगत सात वर्षों में पत्रिका को लेकर पाठकों और लेखकों की क्या प्रतिक्रिया रही है और इतने वर्षो में पत्रिका की क्या उपलब्धियां रही है?

पाठकों और लेखकों की प्रतिक्रिया बहुत उत्साहपूर्ण रही। हालांकि शुरूआत में अधिकांश लोगों को इसके बारे में कुछ खास जानकारी नहीं थी लेकिन जैसे–जैसे लोगों को इसके बारे में जानकारी होती गई उनका सहयोग बढ़ता गया। लेखकों के लिए संगीत में ऑनलाइन प्रकाशन का यह एक नया अनुभव था। धीरे–धीरे प्रकाशन के लिए लेखों की संख्या में बहुत वृध्दि होने लगी। भारत के लगभग प्रत्येक राज्य से लेखकों द्वारा भेजें शोधपत्र व लेख आदि प्रकाशित हो चुके है। इस पूरी प्रक्रिया में सबसे चुनौतीपूर्ण रहा। पत्रिका के गुणवत्ता के स्तर को बनाए रखना। कई बार विषम परिस्थितियाँ भी आई लेकिन हमने किसी हालत में लेखों की गुणवत्ता से समझौता नहीं किया। पत्रिका की उपलब्धियों की बात करें तो अभी तक करीब १२० से अधिक लेख व शोध पत्र हिंदी और अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित हो चुके है। संगीत गैलैक्सी को EBSCO Database में शामिल किया गया है जो कि अन्तराष्ट्रीय स्तर पर शोध पत्रिकाओं का वृहद संग्रह है। भारतीय संगीत पत्रिकाओं में यह पहली पत्रिका है जिसे यह सम्मान प्राप्त है। इसके अतिरिक्त संगीत गैलेक्सी पत्रिका ने संगीत में हुए शोध कार्यों की एक डायरेक्टरी भी प्रकाशित की है। जिसका उद्देश्य संगीत में शोध कार्यों की गुणवत्ता में सुधार करना है।

हमारे पाठकों के लिए लेखन या प्रकाशन संबंधी कुछ सुझाव देना चाहेंगे।

संगीत के लेखन एवं प्रकाशन की क्षेत्र में काम करने की बहुत आवश्यकता है। Research Ethics, Plagiarism, Reference management आदि के बारे में अधिकांश शोधकर्ताओं व लेखकों में जागरूकता का आभाव है, जिसका सीधा प्रभाव उनके लेखन में दृष्टिगत होता है। पिछले आठ वर्षो से संगीत सम्पादन के आधार पर मै कह सकता हूँ कि उत्तर भारतीय संगीत लेखन की तुलना में दक्षिण भारतीय लेखन ज्यादा बेहतर, प्रमाणिक और स्तरीय है। दुनिया बहुत तेजी से बदल रही है। इस बदलाव के साथ ताल मेल बहुत जरूरी है। संगीत के अलावा अन्य विषयों में ऑनलाइन प्रकाशन बहुत समय स े चल रहा है और बहुत आगे निकल चुका है। प्रदर्शनकारी होने के कारण हमारी टीचिंग मेथोडोलॉजी इनसे अलग है। त्वरीत प्रभावित करने के गुण के कारण हम अन्य विषयों से आगे है और अलग भी। लेकिन अन्य विषयों के समानांतर खड़े होने के लिए संगीत साधना के साथ–साथ अध्ययन, विमर्श, स्तरीय लेखन और आधुनिक मानदंडों के अनुरूप प्रकाशन होना बहुत जरूरी है।

मानसिक ताणतणावासाठी औषधोपचार : संगीत

डॉ. अर्पणा अग्निहोत्री
संगीत विभाग प्रमुख
वसंतराव नाईक शासकीय
कला व समाजविज्ञान संस्था,
नागपुर.
sadhanashiledar@gmail.com

"नादनिधनम् जगत्सर्वम्" ह्या श्लोकानुसार पूर्ण चराचर सृष्टीहीना दान व्याप्त झालेली आहे. मानावाबरोबरच संगीताचा सुद्धा जन्म झाला आहे. मनुष्याच्या मनात निर्माण होणारा आनंद, आश्चर्यभाव, विभाव इ. सर्व मनोभावनांची अभिव्यक्ति करण्याचे प्रमुख साधन संगीत आहे. मानवी मनात उठणाऱ्या मानसिक भावनांच्या अंतर ंगाचा आरसा म्हणजे संगीत आहे. जिथे शब्द मौन होतात तिथे स्वरांची भाषा सुरु होते.

शॉपिन हॉक्स यांच्या मतानुसार'संगीत'ही एक अशी कला आहे. जी सरळ श्रोत्यांच्या मनाला जाऊन भिडते. म्हणूनच सुखात आणि दु:खात, ताणतणावात संगीत फार महत्वपूर्ण भूमिका पार पाडते.

संगीत एक अशी भाषा जी लाकाळाचे बंधन नाही. सीमांचे बंधन नाही. जातीचे बंधन नाही. संगीताबद्दल थोडी माहीती असलीच पाहीजे असे ही नाही. केवळश्रवणकेले तरी त्या स्वरांच्या लहरी आपल्याला वेगळ्याच विश्वात घेऊनजातात. मग ते वाद्य संगीत असो किं वासिनेमाती लगीत असो. आपल्यापैकी प्रत्येकालाच संगीत येतेच असे नाही. पण आपण आपल्या मनात चाललेली खळबळ नक्कीच संगीताबरोबर शांत करतो. हा नक्कीच प्रत्येकाचा अनुभव असेल. नेमका हा परिणाम कसा साधल्या जातो तर स्वरांचा प्रभावमन आणि शरीर यांच्या आपापसातील संतूलनावर होतो. विशिष्ट तरंग, ध्वनी ह्यांनी उत्पन्न होणाऱ्या स्वरांच्याआधाराने शरीरावर अधिक प्रभाव होतो. नेमक ेहेच भारतीय संगीताच्या विज्ञानाचे गूढ रहस्य आहे. स्वरांचे आकर्षण हे क्षणाक्षणाला वेगवेगळे असते.

जेव्हा मानसिक तणाव निर्माण होतो त्यावेळी शरीराचे संतूलन सुद्धा बिघडले असते. शरीराचे बिघडलेले संतूलन संगीताच्या माध्यमातून संतूलित करण्यास मदत होते. वेगवेगळ्या परिस्थितीत ध्वनी आणि स्वरांच्या प्रभावाने उत्पन्न होणाऱ्या शारिरीक क्रियांचे परिवर्तन हीच'सांगितीक चिकित्सा पद्धती' किंवा 'म्युजिकथेरपी' म्हणून ओळखली जाते.

मनुष्याला जीवन रस देण्याची शक्ती संगीतात आहे. केवळ एवढेच नव्हे तर आत्मसाक्षात्कार घडवून देण्याची महान ताकद संगीतात आहे. म्हणूनच ताणतणावात संगीत संजीवनी ठरलेली आहे. जेव्हा मनावर तणाव निर्माण होतो. तेव्हा त्याला कप अमतज करणे आवश्यक असते. तेव्हा हळू का होईना संगीतामुळे मनाला स्वस्थता लाभते.

प्रत्येक व्यक्ती आनंदाच्या शोधात असतो. हा आनंदचार प्रकाराने प्राप्त होतो. इंद्रियांना सुख देणारा, बौद्धिक आनंद, मानसिक आनंद आणि आध्यात्मिक आनंद. हे चार ही प्रकारचे आनंद देण्याची क्षमता फक्त संगीतात आहे.

आजच्या धकाधकीच्या जीवनात केवळ चुल आणि मुल एवढ्यावर संसार शक्य नाही. आजच्या जीवनात स्त्री व पुरुष दोघेही बाहेर पडत असतात. घरातून बाहेर पडतांना ऑफीस किंवा आपापल्या क्षेत्रातल्या जबाबदाऱ्या पार पाडून परत येतांना दिवसभरात कोणकोणत्या खाच—खळग्यांना सामोरे जातात ह्याची काही गणनाच नाही. अशावेळी घरात आल्यानंतर जर शांतस्वर तुम्ही ऐकलाच तर नक्कीच दिवसभराचे श्रम हलके होतील. ताणतणावांमुळे आज अगदी लहान

वयात उच्च रक्तदाब, हृदयविकार, मधुमेह ह्यासारख्या रोगांना सामोरे जावे लागते. संगीताच्या माध्यमातून चिंतामूक्त आयुष्य आपण जगू शकतो. शांत संगीत ऐकल्याने शरीरातील स्नायू शिथिल होतात आणि मानसिक ताण कमी होतो. सामवेदात तर ॠचांचे केल्या जाणारे गायन हे हृदय रोग्यांसाठी फार गुणकारी सांगितले आहे. ॠचांच्या स्वर– लहरी शरीरातील रक्ता भिसरणावर अनुकूल प्रभावी ठरलेल्या आहेत. ज्यामुळे रक्तातील हिमोग्लोबीनला अधिक प्रमाणात प्राण वायु मिळतो. एवढेच नव्हे तर आपली कार्यक्षमता वाढविण्यासाठी संगीताचा उपयोग होतो. चंचल मनसंगीताने स्थिर होते. मनाची एकाग्रता वाढविते.

भिन्न–भिन्न स्वरावली ऐकल्याने आपल्या शरीरात अनेक स्थित्यंतर घडून येतात. काही स्वर हे आपल्या शरीराचे तापमान वाढवितात तर काही शितलता प्रदान करतात. काही स्वरांमुळे शरीर रोमांचित होते. तर काही स्वर भावविभोर करतात. ज्याला आपण 'मन' म्हणतो त्यावर सतत होणाऱ्या आघाताने तणावाने मनुष्य शारीरीक व्याधी नसताना सुद्धा व्याधीग्रस्त होतो. अशा व्याधी ने ग्रासलेल्या मनावर संगीत रामबाण उपाय सिद्ध झाले आहे. अस्वस्थ मनाला स्वास्थ्यता मिळवून देण्याची ताकद संगीतात आहे.

संगीताचा Music Theraphy म्हणून वापर केल्या जात आहे. केवळ मानवी मनावरच नव्हे, तर वनस्पती वर सुद्धा त्याचा प्रयोग केल्या जात आहे. पं. ओंकार नााथ ठाकूर ह्यांनी डॉ. जगदीश चंद्रबोस ह्यांच्या प्रयोग शाळेत वनस्पतींवर प्रयोग केला. ज्या वनस्पतींना भैरव राग ऐकविलात्या वनस्पती मधील प्रोटोप्लाज क्लोरोक्लाट विचलित झाल्याने ते गतिमान झाले. त्यामुळे त्या वनस्पतीमध्ये अधिक चमक आली. पंचाबमध्ये एका बागेत रोज सकाळ संध्याकाळ ३० मि.वाद्य संगीत ऐकविले. काही काळाने असे लक्षात आले की त्या झाडांना अधिक फळं लागलेत. जबलपूरचे डॉ. गोर असे म्हणतात की, संगीताने झाड लवकर वाढते. निद्रानाश असणाऱ्या व्यक्तिला जर रोज संगीत ऐकविले तर ती व्यक्ति ह्या व्याधीतून मुक्त होते.

आयुर्वेदात तर २२ नाडी आणि सात चक्रांचे वर्णन आहे. ह्या शरीरातील सात चक्रावर सात स्वर स्थित आहेत असे सांगून प्रत्येकाचे स्वर आणि प्रत्येकाचे रागांविषयी वर्णन केले आहे. याशिवाय कोणता राग गायिल्याने कोणती व्याधी नष्ट होते ह्याचे सुद्धा वर्णन केले आहे. ह्यात मानसिक संतूलनासाठी रागगुणक्री सांगितला आहे.

नागपूरचे प्रख्यात डॉ. आयुर्वेद तज्ञश्री. गोपाळकृष्ण व्याघ्रळकर Music Theraphy च्या माध्यमातून अनेक रोग दुरूस्त करीत होते. त्यांनी अनेक प्रयोग याविषयी केले होते. त्यांनी Bank of Maharashtra च्या कर्मचाऱ्यांवर Music Theraphy चा प्रयोग केला होता. त्यांनी काही वाद्य संगीताच्या Cassettes ऐकविल्या. ह्या प्रयोगासाठी त्यांनी कार्डियालॉजिस्ट सर्जन, आर्थोपेडीक सर्जन ह्यांचीमदत घेतली होती. ह्यातून निष्कर्ष असा निघाला की, संगीत ऐकविल्याने कार्यक्षमता वाढली आणि व्यक्ति Tention free झालेत. अनेक Mental Hospital मध्ये संगीताचा वापर केल्या जात आहे.

'पिकते तिथे विकत नाही' ह्या म्हणीप्रमाणे आपल्या भारतीय संगीताला पाश्चात्य देशात भरपूर मागणी आहे.पण आपल्याला त्या संगीताची कल्पना नाही. आज पाश्चात्य देशात सुद्धा Music Theraphy म्हणून भारतीय संगीताचा वापर केल्या जात आहे. निरनिराळे तिथे संशोधन होत आहेत. प्रसृती वेदना कमी करण्याची क्षमता संगीतात आहे, हे प्रयोगांनी सिद्ध करण्यात आले आहे. याचा उल्लेख पेट्री नावाच्या 'मेडिकल पेपिरी' नावाच्या पुस्तकात केलेला आहे. इंग्लंड आणि अमेरिका मध्ये संगीता द्वारा नशामुक्ती साठी संगीताचा उपयोग ह्यावर प्रयोग चालू आहे. दवाखान्यात रोगींना तिथे नियमीतपणे संगीत ऐकविल्या जाते. ज्यामुळे ते अपेक्षेपेक्षा लवकर बरे होत आहेत असे सिद्ध झाले आहे.

थोडक्यात आपल्या मनातील भावना शब्दरूपी,

अश्रुरूपी इ. माध्यमांनी व्यक्त केल्या तर त्याचा आपल्या मानसिक स्वास्थ्यावर दुष्परीणाम होणार नाही. परंतू त्या मनात दाबून ठेवल्या तर मानसिक ताण वाढतो. स्वभाव चिडचिडा होतो. आत्मविश्वास कमी होतो. संगीताने निश्चितपणे चिडचिडेपणा, चिन्ता, क्रोध इ. वरविजय मिळविता येतो.

'व्यक्ति तितक्या प्रकृती' प्रमाणे प्रत्येकाची गीतांची आवड–निवड वेगळी असेल. कुणाला भक्ति संगीत आवडेल तर कुणाला गजल, कुणाला वाद्य संगीत. संगीतामुळे भावनांचे विरेचन होऊन मानसिक स्वास्थ्य उत्तम राखण्यास मदत होते. एखाद वेळी व्यायामाने किंवा योग साधनेने शरीर निरोगी ठेवता येईल पण मननिरोगी ठेवण्यास मात्र संगीत प्रभावी माध्यम आहे. म्हणून आपल्या आवडीनुसार रोजगीत ऐकावेच.

माणसाचे मन, निरोगी असेल तर त्याच्या शारीरिक, व्याधी झपाट्याने दुरूस्त होतात. पण मन जर ताणतणावात असेल, चिंताग्रस्त असेल, अशांत असेल तर शरीर निरनिराळ्या रोगांना आमंत्रण देते. या विकारीमनाला शांत व स्थीर ठेवण्यास संगीताचा निश्चित उपचार म्हणून वापर करावा.

संदर्भ–

१) संगीत संजीवनी काव्या

२) Quantum Healing- गो.व्याघ्रळकर

३) Music and Sahajyog – Dr. ArunApte

४) संगीत कला विहार मार्च २००९

संगीत एवं योग द्वारा हमारे स्वास्थ्य पर प्रभाव

प्रा. अनिता शर्मा
संगीत विभाग प्रमुख,
दयानंद आर्य कन्या महाविद्यालय,
जरीपटका, नागपुर.
anitasharma12@gmail.com

प्राकृतिक नियमानुसार प्रत्येक प्राणी अपनी—अपनी अनुभूतियों का किसी ने किसी रूप में सदा से अभिव्यक्त करता आया है। समस्त ललित कलाओं में संगीत का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए हमारे ऋषियों, विद्वानों ने जिस दूसरी पध्दति का या विद्या का अनुसंधान किया है वह है 'योग' जिसका मुख्य उद्देश्य शरीर को मानसिक तथा शारीरिक तौर पर स्वस्थ्य रखना ही है।

संगीत को ईश्वर का दर्जा प्राप्त है, इसीलिए इस विद्या में शुध्दता और शास्त्रीयता का विशेष महत्व है। सात शुध्द और पांच कोमल स्वरों को माध्यम से मन को साधने का उपाय है संगीत। एक तरफ जहां 'योग' से मनुष्य शरीर, मन और मस्तिष्क को साधता है, वही 'संगीत' हमारी आत्मा को शुध्द करता है।

मानव जीवन की आवश्यकताओं में पहला सुख निरोगी काया माना गया है। जिसप्रकार संगीत एक उपासना का तरीका है उसी प्रकार का 'योगशास्त्र' जीवन का मित्र है। संगीत में रियाज के लिए एकाग्रता की आवश्यकता होती है। 'योगशास्त्र' हमारे शरीर को स्वस्थ रखने में सहायक है। संगीत में स्वरों की शुध्दता पर जोर दिया जाता है, पर योगशास्त्र में आसन व मुद्राओं पर जोर दिया जाता है। दोनों में ही स्वर व मुद्रा की श्रेष्ठता से आनंद और स्वास्थ्य पाया जा सकता है। संगीत साधना फिर चाहे गायन हो, वादन हो, कलाकार को एक ही मुद्रा में घंटो बैठे रहना पड़ता है। उसी तरह से योग में भी एक अवस्था में बैठना आवश्यक है। संगीत में एक ही स्थान पर साधना करने के लिए शरीर, मन व मस्तिष्क पूर्ण स्वस्थ होना चाहिए और इसके लिए योग सर्वश्रेष्ठ है। विभिन्न वैज्ञानिक प्रयोगो द्वारा यह सिध्द हो चुका है कि संगीत साधना व योग साधना दोनो से मनुष्य के जीवन में शक्ति का विकास होता है। अत: कहा जा सकता है कि शरीर तथा मन को स्वस्थ, प्रफुल्लित रखने के लिए योग शास्त्र व संगीत शास्त्र दोनों समान रूप से आवश्यक है। योग की तरह ही संगीत से तनाव भी दूर होता है।

यौगिक साधना हेतु संगीत के उपयोग का विश्लेषण हमें हमारे प्राचीन ग्रंथों से प्राप्त होता है। यौगिक प्रणाली में संगीत का उपयोग उसमे एकाग्रता के गुण को देखते हुए ही करने का उपदेश हमारे प्राचीन शास्त्रियों ने दिया है। योग की साधना स्वर के माध्यम से करनी चाहिए।

व्यायाम —

योग में मनुष्य शरीर को स्वस्थ रखने हेतु विभिन्न आसन दर्शाये गए है तथा संगीत में इनमे से कुछ आसन नैसर्गिक तौर पर ही हो जाते है। गाते समय मुंह, जीभ और होंठ ही काम नही करते वरना आवाज नाभि से खिंचती है और ब्रहारन्ध्र तक पहुँचती है फिर तालुओ से खींचकर गले से उसे निकालते है इस तरह कमर से नीचे के हिस्से को छोड़कर शेष सम्पूर्ण शरीर का भीतरी व्यायाम हो जाता है। जो मनुष्य वाद्ययंत्र स्वयं बजाते है। उनके सिर, गर्दन, छाती, कंधे पेट आदि का व्यायाम हो जाता है तथा जो लोग फूंक से बजने वाले वाद्य बजाते है उन्हें तो गायन के समान ही लाभ मिलता है। संगीत मे निहित

तीसरी विद्या नृत्य या पूर्णरूपेण शारीरिक व्यायाम ही है इसके द्वारा शरीर के समस्त अंगो का व्यायाम नैसर्गिक तौर पर अपने आप ही हो जाता है। संगीत एक प्रकार की स्वर साधना एवं प्राणायाम भी है जिससे शरीर के भीतरी अवयवों का व्यायाम भी होता है और आक्सीजन की वृध्दि भी।

प्राणायाम –

संगीत से सबसे ज्यादा मनुष्य की श्वास प्रणाली ही प्रभावीत होती है। गायन मे भी प्राणयाम की तरह गहरी साँसे ली जाती है उससे यह लाभ होता है कि मनुष्य खाली समय में भी गहरी साँसे लेने लगता है जो कि उसके स्वास्थ्य के लिए बहुत ही लाभकारी सिध्द होता है।

प्राणायाम करने से मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा होने के अलावा जीवन भी दीर्घायु होता है। संगीत में खासतौर पर गायन की इसी विशेषता को देखते हुए हमारे प्राचीन ऋषियों/विद्वानो ने संगीत को इतना महत्व दिया तथा हर व्यक्ति इससे लाभ प्राप्त कर सके। बाँसुरी वादक अभय फगरे बाँसुरी वादन को एक योग क्रिया ही मानते है वे कहते हैं जब बाँसुरी बजाई जाती है जो एक्सहेल और इन्हेल जैसी क्रियाए होती है जिसे योग की भाषा में प्राणायाम कहते है।

ध्यान –

संगीत मे भी ध्यान लगाना होता है और योग मे भी। संगीत मे मनुष्य पूरी तरह से खो जाता है तथा उसके मस्तिष्क मे सिवाय उस संगीत के कोई भी दूसरा विचार नही रहता जिसे हम ध्यान की स्थिति से सम्बोधित कर सकते है। एकाग्र चिन्तन ध्यान है, भाव क्रिया ध्यान है और चेतना के व्यापक प्रकाश में चित्र विलीन हो जाता है वह भी ''ध्यान'' है। योग में भी ध्यान एक क्रिया होती है। यदि हम ध्यान की स्थिति के लिए शरीर के विभिन्न अंगो की भूमिका की समीक्षा करे तो हम पाते है कि यह पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा भिन्न–भिन्न प्रकार से हो सकता है। कर्णेन्द्रिय के माध्यम से नाद योग, नासिका द्वारा गंध योग, जिह्वाद्वारा रसनायोग, त्वचा द्वारा स्पर्श योग की अनेकों विधि विधान है।

इनमें से प्रथम नाद ही संगीत के द्वारा ध्यान की स्थिति निर्मित करने में मुख्य तत्व है। ध्यान को योग शास्त्र में भी आनंद प्राप्ति हेतु अंतिम सीढी माना है।

योग और संगीत का जुड़ाव सारी दुनिया मानती है। संगीत के बिना योग अधूरा है और संगीत भी योग द्वारा ही तन और मन दोनों के लिए लाभदायक है। योग करते समय भी संगीत के साथ शरीर और आत्मा से जुड़ाव तेजी से होता है। योग में ध्यान, प्राणायाम, अनुलोम–विलोम, ओम उच्चारण और उंगलियों व कंठ की कई ऐसी एक्सरसाइज है तो संगीत के जरिए की जा सकती है।

ओंकार साधना –

ओंकार साधना मतलब कपालभाती रियाज मे श्वास का सबसे ज्यादा महत्व है। निरंतरता श्वास पर डिपेंड करती है। योग की भाषा मे इसे ब्रिदिंग एक्सरसाइज कहा जाता है।

कैसे काम करता है संगीत योग –

संगीत योग सामान्य व्यक्तियों के लिए भी बहुत उपयोगी है, क्योंकि यह उम्र बढ़ने के कारण आपकी कमजोर हो चुकी जीवनी शक्ति को पुन: जागृत कर सकता है। जैसे संगीत योग का नियमित अभ्यास एक महिला और पुरूष के चेहरे पर अधिक ताजगी और नवयौवन लौटा सकता है। अगर वह कुछ योग और आहार नियंत्रण के साथ नियमित आधार पर इसका पालन करते है।

संगीत योग साधन एक सामान्य व्यक्ति के स्वास्थ्य को सुरक्षित रखता है और बीमार व्यक्ति के स्वास्थ्य को लंबे समय तक दवाओं के उपयोग के दुष्प्रभाव से बचाता है, जो अंतत: किसी भी दवा के लंबे समय तक उपयोग के बाद हमारे प्रतिरक्षा प्रणाली और शरीर के अंगो को नुकसान पहुँचता है। आपके जीवन का हर पल कीमती है। संगीत योग का

अभ्यास आपके लिए और यहां तक कि उन लोगों के लिए भी खुशी और मानसिक शांति के नए क्षितिज खोल देगा, जो कई बीमारियों से पीड़ित या रोगग्रस्त है और जल्द से जल्द ठीक होना चाहते है।

संगीत योग का नियमित अभ्यास हमारे मेडिकल, मासिक और वार्षिक खर्चो को लगभग एक तिहाई था एक चौथाई तक ला सकता है – विभिन्न वैज्ञानिक प्रयोगो द्वारा यह सिध्द हो चुका है कि संगीत साधना व योग साधना दोनो से मनुष्य की जीवन शक्ति का विकास होता है। आत्म साक्षात्कार हेतु प्रयासरत साधको के लिए योग व संगीत का मेल वरदान स्वरूप है।

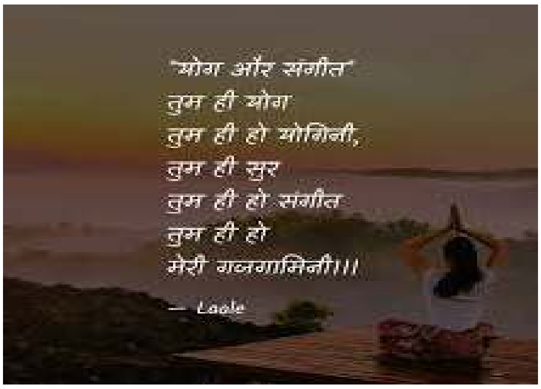

संदर्भ :

१. संगीत चिकित्सा – डॉ. सतीश वर्मा
२. इंटरनेट – webdunia.com / m.patrika.com

'संगीत कला के महान तपस्वी' स्व श्री प्रभाकरराव खर्डेनविस

प्रा. वर्षा आगरकर
असिस्टंट प्रोफेसर,
दयानंद आर्य कन्या महाविद्यालय,
जरीपटका, नागपुर.
12varshaagarkar@gmail.com

संगीत को स्थान दिलवाने वाले विदर्भ के प्रथम नागपुर निवासी जिन्होंने अपना सर्वस्व जीवन संगीत को ही समर्पित किया। ऐसे स्व. श्री प्रभाकरराव खर्डेनविस विदर्भ आकाशवाणी की स्थापना के पहले से ही, मुंबई आकाशवाणी में अपनी गायन–प्रस्तुति सन १९४५ से देते आ रहे थे। १९४८ में विदर्भ में आकाशवाणी स्थापित होते ही उनकी गायन प्रस्तुतियाँ प्रारम्भ होने लगीं। उस समय विदर्भ के जाने माने दिग्गज कलाकारों को बड़े सम्मान के साथ निमंत्रण देकर आकाशवाणी में प्रस्तुतीकरण के लिये बुलाया करते थे। उनकी गायन शैली से हजारों लोग प्रभावित होते थे। यही आकाशवाणी के लिये उनका योगदान कहा जाये तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। ऑडीशन की प्रक्रिया आकाशवाणी स्थापना के चार साल बाद शुरू की गई।

प्रभाकरजी का जन्म ३० मई १९२० को नागपुर से १२ कि.मी. दूर ननिहाल पाटनसावंगी गाँव में हुआ था। उनके माता–पिता नागपुर के महल विभाग में रहते थे। पिताजी को शुरू से ही गायन में रूचि रही। अपनी इच्छा उन्होंने अपने बेटे प्रभाकरराव द्वारा पूर्ण की। सन् १९२८ से स्व. श्री शंकरराव प्रवर्तक के ''अभिनव संगीत महाविद्यालय'' में ८ वर्ष की उम्र से संगीत की प्रारंभिक शिक्षा शुरू हो गई। प्रभाकरराव की गायन में विशेष रूचि को देखते हुये शंकररावजी उनकी तरफ विशेष ध्यान और मेहनत लेने लगे। परिवार के लोग उन्हें सुबह की भोर में ३–४ बजे स्वयं विद्यालय पहुँचाया करते थे। वहाँ गुरूजी की निगरानी में सुबह आलाप तानों की घुटाई प्रारम्भ हो जाया करती थी। प्रभाकररावजी की आवाज में मीठापन और फिरकियाँ बहुत थीं। साथ में ताल और लय की भी समझ थी। बारह वर्ष की उम्र में उन्हें 'बाल भास्कर' उपाधि से नवाज़ा गया। शिष्य की गुण ग्राहकता देख गुरू और शिष्य देश भ्रमण को निकल पड़े। मुंबई–पूना की बड़ी–बड़ी हस्तियों ने बाल प्रभाकर की रागदारी गायन को सुना। वहाँ वाह–वाह बटोरकर विजय पत्र हासिल किया। केवल चौदह वर्ष की आयु में अपनी ठसकेदार आवाज में ग्वालियर के स्व. राजाभैया पूँछवाले के 'माधव संगीत महाविद्यालय' में बड़े बड़े संगीतज्ञों की उपस्थिति में शास्त्र शुध्द जेताश्री राग सुनाकर खुद की काबिलियत दिखा दी। रायपुर, बिलासपुर आदि अन्य जगहों में उनकी गायन महफिलें हुई। जिससे 'मास्टर प्रभाकर' की उपाधि ग्रहण की। फिर घर की आर्थिक परिस्थिति के कारण उन्हें नागपुर आना पड़ा। १९४० में दसवीं की पढ़ाई की। १९४० में स्व. शंकररावजी ने जो ''भातखंडे म्यूज़िक विद्यालय'' की स्थापना की थी, उसकी संपूर्ण जिम्मेदारी प्रभाकरजी को सोंप दी। यह विद्यालय अभी भी नियमित चल रहा है। १९४५ में भास्करजी ने 'प्राज्ञ–विशारद' परीक्षा में प्रावीण्य के साथ सफलता हासिल की।

अकोला के सीताबाई आर्ट्स कॉलेज के संस्थापक व प्राचार्य श्री बाबूराव जोशीजी ने महाविद्यालय में संगीत विषय शुरू कर प्रभाकररावजी को 'संगीत शिक्षक' के पद पर नियुक्त किया। प्रभाकररावजी गायन के साथ–साथ हार्मोनियम, दिलरूबा, सारंगी, वायोलिन आदि वाद्यों में भी निपुण थे। इस तरह वे चतुर्विध कलाओं में पारंगत थे। बड़े–बड़े दिग्गज कलाकार उनके महाविद्यालय में समय–समय पर अपेपज दिया करते थे। जैसे मुश्ताक हुसैन खाँ, ए.

कानन, राम मराठे, सुरेश हलदणकर, शिवकुमार शुक्ल, अमीर खाँ आदि। १९५२ में नभोवाणी केन्द्रमंत्री डॉ. केसकरजी ने भी इनके महाविद्यालय में जाकर समाधान प्रकट किया। कुछ समय १९५२–१९५३ में एल.ए.डी महाविद्यालय में संगीत प्राध्यापक का कार्य किया। १९५४ अक्टूबर में नागपुर महाविद्यालय वर्तमान का मॉरिस कॉलेज में प्रथम संगीत प्राध्यापक पद पर नियुक्त हुयी। उनके कार्यकाल में दिन–प्रतिदिन संगीत विभाग की उन्नति होती जा रही थी। सन् १९६३ में यहाँ संगीत विषय में एम.ए. शुरू हुआ। उन्होने कम से कम ७५–१०० छात्राओं को एम.ए. में कुशल मार्गदर्शन दिया है। इसके अतिरिक्त इन्होने युनिर्वसिटी के बोर्ड ऑफ स्टड़ीज, फेकलटी ऑफ आर्ट्स, ॲकेडेमिक काउन्सिल, युनिवर्सिटी कोर्ट इत्यादि समितियों में कार्य किया हैं।

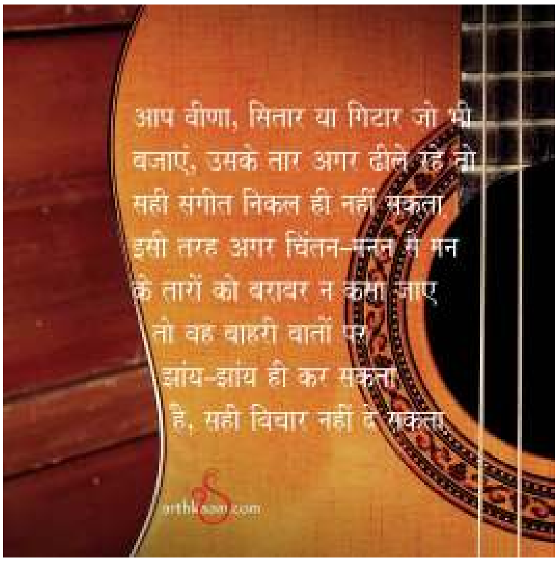

उनके संगीत महाविद्यालय से अनेक शिष्य कलाकार के रूप मे सामने आये। जिसमे, बॅरिस्टर दामोदरराव वाडेगावकर, सौ. कुसुम तांबे, सौ. रजनी जोशी, प्रा. सौ. निर्मला केळकर, श्यामसुंदर खर्डेनविस, गिरीश वझलवार, प्रभाकरराव काळे, भालचंद्र बोबडे और पं.नारायण मंगरूळकर, कमलताई भोंडे, अनिरूद्ध देशपांडे, श्रीमती प्रभा राव, सौ. निर्मला केळकर इत्यादी।

संगीत परम्परा को आगे बढ़ाने में उनके पुत्र दत्तात्रय, सुरेश व पुत्री लता, स्मिता का योगदान जारी है। पिता का संगीत विद्यालय पुत्र दत्तात्रय सम्भाल रहे हैं। पुत्र सुरेश एल.ए.डी. कॉलेज में तबला विषय के पद पर नियुक्त हैं। छोटी बेटी स्मिता जो वर्तमान में स्मिता खर्डेनवीस जोशी हैं वे सुगम संगीत की क्लासेस चलाकर उसकी परीक्षायें भी दिलवाती हैं। साथ ही वे आकाशवाणी में सुगम संगीत गीत प्रकार में ए. श्रेणी कलाकारा है। २०१० के अंतिमक्षण तक प्रभाकररावजी ने अपना संपूर्ण जीवन संगीतक्षेत्र को समर्पित कर लिया।

'रागों का उगम स्त्रोत' (लोकधुनों में राग-तत्व)

डॉ. साधना शिलेदार
सहयोगी प्राध्यापिका संगीत विभाग,
वसंतराव नाईक शासकीय कला व
समाजविज्ञान संस्था, नागपुर

क्षमा कावड़े,
शोधार्थी
संगीत विभाग,
व.ना.शा.क.व.स.वि.सं. नागपूर

भारतीय संस्कृती कादर्शन कलाओं के माध्यम से होता है। स्थापत्यकला, मूर्तीकला, चित्रकला, संगीत, काव्य, नृत्य एवं रंगमंच इन सभी कलाओं के माध्यम से मानवीय संवेदनाए अभिव्यक्त की जाती है। हिन्दुस्तान की संस्कृति का प्रतिनिधित्व संगीत कला में अत्यधिक प्रवीणता से होता है। रामायण एवं महाभारत में संगीत के उल्लेख पाये जाते है। लेकिन इसके पुर्व वैदिक काल में भी संगीत का उल्लेख मिलता है। हिन्दुस्तानी संगीत का मूल ग्रंथ सामवेद है। हिन्दुस्तानी संगीत की उत्पत्ति साथ ही सामवेद के मंत्रों का पाठ करने के लिए स्वरों का उपयोग किया जाता था। उस काल सें संगीत के दो ही प्रकार थे – मार्गी एवं देशी संगीत।

समाज में जब सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिवर्तन बढ़ने लगे तब समय के साथ संगीत भी बदल गया। जिससे अपरिवर्तनशील मार्गी संगीत लुप्त होता गया व देशी संगीत ही प्रचार में रहा। शास्त्रीय, उपशास्त्रीय, सुगम एवं लोक संगीत यह संगीत के मुख्य प्रकार माने जाते है। शास्त्रीय संगीत को ही राग संगीत भी कहा जाता है। राग ही हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का मूल आधार है। राग, यह आशय है तो ख्याल घाट अथवा शैली है। शास्त्रीय संगीत का प्रवास प्रबंध गायन तथा ध्रुपद गायन से चलकर आज ख्याल गायन तक आ पहुचा है। शास्त्रीय संगीत के कई नियम एवं कायदे कानून होते है। गुरूशिष्य परंपरा के द्वारा विधिवत एवं नियमित तालिम के साथ प्रशिक्षित कर इन नियमों को संरंक्षित रखा गया है। ध्रुवा नामक प्रबंध से तैयार हुआ ध्रुपद गायन सदियों से शास्त्रीय गायन शैली के रूप में अपना आधिपत्य जमाये हुए है।

हिन्दुस्तानी संगीत की दो मुख्य धाराऐं है – कर्नाटक संगीत अर्थात दक्षिण भारतीय संगीत तथा उत्तर भारतीय संगीत । कर्नाटक संगीत मुख्यत: भक्तिरस प्रधान है, जिसे संतो ने भगवान की उपासना करते हुए मंदिरो मे गाया। उत्तर भारतीय संगीत सिर्फ मंदिरों में ही नही बल्कि साथ ही साथ दरबारों में भी प्रदर्शित किया जाता था। उस अवधि के दौरान मुस्लिम शासकों के हमलों और राजनितिक प्रभावों ने सांस्कृतिक क्षेत्र को भी प्रभावित किया। उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत का भौगोलिक क्षेत्र बड़ा था, अत:कई परिवर्तनों का सामना करते हुए, अरबी एवं फारसी संगीत के प्रभाव को स्वीकार कर संगीतबदला एवं हिन्दुस्तानी संगीत का पौर्वात्यसंगीत के साथ मिलाया गया। कव्वाली और सादरा जैसे गीत प्रकारों के प्रभाव से उत्तर हिन्दुस्तान का संगीत अब ख्याल गायन शैली में स्थिर हुआ है। ध्रुपद गायन पर अन्य गायन शैलियों के प्रभाव के साथ ख्याल गायन लोकप्रिय हाता गया एवं लोकप्रियता के साथ ख्याल गायकीके जयपुर, आगरा एवं किराना घराने प्रस्थापित हुए। चाहे वह ध्रुपद हो या ख्याल, राग ही हिन्दुस्तानी संगीत की नीव हैएआधार है। –ख्याल शैली से राग का गायनऐसा शास्त्रीय संगीत का आजकास्वरूप है।हिन्दुस्तानी संगीत में शास्त्रीय संगीतके अलावा मूलभूत एवं शक्तिशाली परंपरा है जो कि लोकसंगीत की है। लोगो द्वारा लोगो

के लिए बनाया गया लोगो का संगीतयह लोकसंगीत है।

''ख्याल का उल्लेख इतिहास में यवन काल के लोधी काल से दिखाई देता है। जिसकी कालावधि १४८६ से १५२५ तक की मानी जाती है। आगे भी १७ वी सदी के १७४० तक ध्रुपद शैली विशेष रूप से प्रचार मे रही। ख्याल, यह शब्द अरबी भाषा से लिया गया है। लेकिन ख्याल का अविष्कार यवन काल का ना होते हुए १३ वी शताब्दी में शारंगदेव द्वारा बताया गया साधारण गीती प्रकार का विकासित रूप ख्याल है।'' १•

उत्तर भारत में अनेक प्रकार के लोकगीत गाये जाते है। रसिया, होरी जैसे अनेक लोकगीत से जुड़े उपशास्त्रीय संगीत प्रकार है। लोक—संगीत पर आधारित सावनी, कजरी, चैती व झुला जैसे विविध उपशास्त्रीय गीत प्रकार उत्तर में गाये जाते है। वर्षाऋतु के मौसम में कजरी, झुला, सावनी और चैत्र की पालवी के साथचैती गायन से मानो संगीत प्रकृति के साथ एकरूप हो जाता है। उपशास्त्रीय संगीत के ये लोकप्रिय गीत प्रकार मुख्य रूप से खमाज, देस, काफी, तिलंग इनरागों में गाये जाते है। शास्त्रीयसंगीत केधमार एवं लोक परंपरा के इनगीतोंके संयोग से उपशास्त्रीय संगीत की रंगत और भी अधिक बढ़ गई।

महादेवयहमहाराष्ट्र में गाया जाने वाला लोकगीत का एक प्रकार है। सावनके महिने में महाशिवरात्री के आसपास महादेव जाने वाले भक्त ''पोहा चालला महादेवा'' इस गीत को गाते जाते है। जो कि राग पहाडीसे है। पंजाब मेंभीपहाड़ी रागसदृश लोकधुने पायी जाती है

हमारी संस्कृती संगीत से भरी हुई है। सुबह 'भूपाली,' गांव को जगाने के लिए 'वासुदेव' व रात को सोने के लिए 'लोरी' ये लोक संगीत के पहलू है। चाहे खुशी हो या दु:ख; कोई समारोह, उत्सव, जन्म, लग्न ऐसे प्रत्येक क्षणों में लोकसंगीत की बड़ी हिस्सेदारी होती है। मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति लोक संगीत के माध्यम से होती है। अनेक लोकगीत नृत्य करते हुए समूह में भी गाये जाते है। लोकसंगीत का रचियता अनामिक होता है। समय की कसौटी पर ही इसकी परख होती है। इयलिए निश्चित ही यह पुराना है एवं इसके परंपरागत स्वरूप को सहेज कर रखने का दायित्व ''लोक'' इस नाते हम सबका है। लोकसंगीत एवं राग संगीत ये दोनो ही स्वतंत्र शैलियाँ है। दोनो में कई समानताऐ भी है। इनकी एक लंबी एवं समृद्ध परंपरा है। ये दोनो प्राचीन शैली मुख्य रूप से मौखिक परंपरा के माध्यम से समानांतर है एवं संरक्षित है। जिन रागों की अवधारणा पर हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत खड़ा है उन रागों के उद्‌गम के अनेक स्त्रोतो में से एक है — लोक संगीत। देश, मांड, पिलू, पहाड़ी जैसी परंपरागत रागों का जन्म लोकसंगीत की धुनों से हुआ है। इसलिए 'लोकसंगीत को शास्त्रीय संगीत की जननी' माना जाता है। इन दोनो संगीत ध ााराओं का अध्ययन करना अत्यंत महत्वपूर्ण है जो संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते है एवं जिससे उनके अंत: सहसंबंध का पता लगा सकते है।

''लोकसंगीत अकसर समूह में गाया जाता है। तो राग संगीत स्वतंत्र गायन है। स्वरो की न्युनतम संख्या और ताल (लय) की सादगी लोकगीत है। अर्थात लोकसंगीत में स्वर एवं लय महत्वपूर्ण घटक है। तो वही राग गायन में भी स्वर, शब्द एवं ताल इन तीनों का ऐसा ही सौंदर्यबोध है। लोकसंगीत में लयबद्धता तालबद्धता इनमे थोड़ी सरलता एवं सहजता होती है और इसी सरतला को थोड़ा क्लिष्ट कर नियमों मे बांधकर, ताल, लय एवं शब्दो के साथ अलंकृत किया जाता है तो शास्त्रीय दृष्टिकोण से राग का रूप सामने आता है।'' २•

सन्‌ १९५० के आसपास एक प्रयोगशील कलाकार पं. कुमार गंधर्व ने लोकसंगीत एवं शास्त्रीय संगीत के परस्पर संबंध पर पुन: एक बार रोशनी डाली। मध्यप्रदेश का मालवा प्रांत जो कि लोकसंगीत के संदर्भ में अत्यंत समृद्ध प्रांत है। यहाँ सावन मास

में महिलायें जो लोकगीत गाती है उनमें कुमार जी को राग निर्मिति की क्षमता नजर आई।

पं. कुमार गंधर्व एवं उनकी पत्नी भानूताई ने मालवा प्रांत की लोकधुनो का अभ्यास कर उस आधार पर रागों का निर्माण किया जिन्हे 'धुन उगम राग' नाम की संज्ञा दी। रागो के नियम बनाए, उनका चलन निश्चित किया एवं स्वरूप स्पष्ट किया, ऐसे नवनिर्मित धुन उगम रागों में बंदिशे बांधी एवं अपनी महफिलों में गाकर इन रागों को प्रसिद्ध किया। पं. कुमार गंधर्व के लोकसंगीत से शास्त्रीय संगीत के रूपांतर को संगीत क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण प्रयोग माना जाता है।लोक कलाकार जिसने संगीत का कोई प्रशिक्षिण नही लिया है। वह अपनी पुर्व पिढ़ियों से मौखिक रूप में प्राप्त लोकधूनों को किस तरह सहेज कर रखता है? उनमें आवाज का लगाव कैसा होता है? उनमे स्वरों के स्थान कैसे होते है? इनका अभ्यास महत्वपूर्ण है। सर्वसामान्य लोक कलाकार द्वारा गाई गई लोकधुनों से शास्त्रीय संगीत की बंदिशे कैसे बनाई जाती है? उन गीतों में बंदिशों के तत्व कहाँ मिलते है? किसी लोक धुन में रागत्व कैसे मिलता है? लोकधुन से राग तक का सफर कैसा होता है? ये सबकुछ पं. कुमार गंधर्व ने स्पष्ट किया है। लोकधून छोटी होती है एवं साधारणत: ३ या ४ स्वरों की होती है, लेकिन राग में कम से कम ५ स्वरों का होना आवश्यक है। यद्यपि लोकधूनों का चलन मर्यादित होता है। तथा राग विस्तारक्षम होना आवश्यक है। इस दृष्टि से लोकधुनों पर राग संस्कार करना आवश्यक होता है। रागों मे स्वरों का कम महत्व एवं विस्तार के लिए न्यास के स्थान ढुंढ़ने पड़ते है, विस्तार शक्यता ढुंढ़नी पड़ती है। जबकि लोकधुने क्षेत्रिय होती है लेकिन फिर भी उनसे निर्मित राग क्षेत्रिय नही होता। इन रागों में धुनों का आधार होता है लेकिन अन्य रागों की तरह वे सशक्त होते है।

लोकसंगीत एवं शास्त्रीय संगीत इनका नाता दो तरफा होता है। शास्त्रीय संगीत का कलाकार स्वर संगतियों से रागत्व ढुंढता है, तो लोकसंगीत का कलाकार उनमे धुन ढुंढ़ता है। लोकधुनों में सुप्त अवस्था में निहित रागत्व तथा रागत्व का रूप मिली हुई लोकधुन इनका नाता शास्त्रीय संगीत एवं लोकसंगीत जितना ही प्रवाहि, पारंपारिक एवं जिवंत है।

संदर्भ–:

१.व्याससुजाता, रूपक – कुमार गंधर्व एक समर्पण, आकाशवाणी नागपुर, मई २०१९

२. अग्निहोत्री अपर्णा, रूपक – कुमार गंधर्व एक समर्पण, आकाशवाणी नागपुर, मई २०१९

मागील दशकातील तांत्रिक प्रगतीच्या संदर्भात भारतीय संगीत (मागील दशकातील तांत्रिक प्रगतीचा भारतीय संगीतावरील प्रभाव)

प्रा. स्वप्निल चंद्रकांत चाफेकर
(गायक, कवी, संगीतकार)
सह. प्राध्यापक (हिंदुस्थानी गायन),
चिन्मय युनिव्हर्सिटी, पुणे.
संपर्क: ९७६४६०५४३०
इमेल : swapnil.chaphekar@cvv.ac.in

कला ही प्रवाही असते. कालमानानुसार ती बदलत जाते. त्या त्या काळच्या सामाजिक, राजकीय आणि सांस्कृतिक परिस्थितीचा परिणाम मानव समाजाच्या अभिरुचीवर होत जातो आणि कला वेगवेगळी वळणे घेत जाते. काळाचा प्रभाव एकूणच समाजावर होत असतो, तेव्हा कलावंत, रसिक, गुरुजन आणि कलाविश्व त्यातून वेगळे कसे राहील? कधी कधी प्रस्थापित कलाविश्वाला एकदम धक्का देणारी एखादी घटना घडते, किंवा असामान्य प्रतिभेचा एखादा कलावंत त्या कलेची क्षितिजेच बदलून टाकतो. मात्र कलातत्व शाश्वत राहते. कलेचे बाह्यांग बदलले तरी तिची मूलतत्त्वे, रंजनवृत्ती आणि तिचे मानवी जीवनातील स्थान कायम राहते.

संगीतकलेचा इतिहास पाहता हे समजते की, अनेक विध कारणांनी संगीतकला देखिल वेळोवेळी आपले स्वरूप बदलत राहिली व सांप्रतचे स्वरूप ६ ाारण करती झाली आहे. तिचे आजचे स्वरूप हेही शाश्वत नाही, तेही येत्या काळात बदलत राहणारच आहे. ह्या पार्श्वभूमीवर मागील दहा वर्षांत हिंदुस्थानी संगीतात काय काय विशेष परिवर्तने घडून आली याचा मागोवा घेण्याचा प्रयत्न प्रस्तुत शोधपत्रात केला गेला आहे. खरे तर कलाविश्वात परिवर्तनाचा मागोवा घेण्यासाठी दशक हे माप अत्यंत अपूर्ण वाटावे, कारण स्थित्यंतरे दशकांनी नव्हे तर शतकांनी मोजली जातात. तथापि, मागील दशकात त्यापूर्वी होऊ घातलेली काही परिवर्तने पूर्णत्वास पोहोचली व येत्या काळात होऊ पाहणाऱ्या काही परिवर्तनांची नांदी झाली आहे, ती कोणती, हे पाहणे उद्बोधक ठरते. इसवी सन २००६–०७ ते २०१६–१७ हे दशक अनेक बाबतींत महत्वपूर्ण आहे. ह्या दशकात संगीतकलेच्या शिक्षण, सादरीकरण आणि रसग्रहण ह्या तीन मुख्य घटकांमध्ये महत्वाचे बदल आढळून येतात. शिवाय कलाव्यापारात प्रसिद्धी (प्रमोशन), ऑनलाइन सादरीकरण व उत्पन्नाची साधने इत्यादी घटकांची भर पडली आहे. ह्या सर्व बदलांमध्ये ह्या दशकातील तंत्रज्ञानातील प्रगती, प्रसार माध्यमे आणि सोशल नेटवर्किंग वेबसाईट्स ह्यांचा महत्वाचा सहभाग आहे.

डिजिटल क्रांती :

१९६०च्या दशकात इंटरनेट सुरु झाले आणि जग एका नव्या बदलाला सामोरे जाऊ लागले, ज्याला डिजिटल क्रांती असे म्हणतात. मागील दशकात जगाच्या लोकसंख्येपैकी इंटरनेट वापरणाऱ्या व्यक्तींची संख्या, जी २००६ मध्ये १५.७ टक्के होती, त्यावरून आज ह्यव्यक्त मध्ये २०१७ टक्क्यांवर पोहोचली आहे. भारतात विदेश संचार निगम लिमिटेड (VSNL) ने १९९५ मध्ये इंटरनेट आणले. २००० च्या दशकात स्मार्ट फोन अस्तित्वात आले आणि इंटरनेट केवळ संगणकापुरते मर्यादित न राहता व्यक्तीव्यक्तीच्या अक्षरशः हातात आले. परंतु ही सुविधा सर्वसामान्य माणसाच्या खिशाला परवडण्याइतकी स्वस्त नव्हती. २००७ च्या अखेरीस गुगलने अँड्रॉइड मोफत उपलब्ध करून द्यायला सुरुवात केली.घ्पल, विंडोज यांनीही त्यात भर घातली. २०१० मध्ये ४ जी आल्यानंतर खऱ्या अर्थाने इंटरनेट सर्वसामान्य भारतीयाच्या कह्यात आले. याचे अनेक दूरगामी परिणाम

संगीत जगतावर होऊ लागले.

तंत्रज्ञानातील प्रगती आणि प्रसिद्धी (प्रमोशन) : २००४ मध्ये मार्क झुकरबर्गने फेसबुक ह्या वेबसाईटची स्थापना केली आणि एकूणच मानवी जीवनातील परस्पर—संबंधांत आमूलाग्र बदल घडत गेला. तसे त्याआधीही ऑर्कुट सारख्या साईट्स होत्या मात्र फेसबुक ही एक क्रांती ठरली. कलाजगतात फेसबुकचा वापर सुरु झाला आणि तो झपाट्याने वाढत गेला. कलाकार आपल्या प्रसिद्धीसाठी आणि लोकसंग्रहासाठी फेसबुक मोठ्या प्रमाणावर वापरू लागले. एप्रिल २००६ मध्ये फेसबुक मोबाईलवर आले. म्हणजे अक्षरशः मुठीत आले. त्यामुळे मोठ्या कलावंतांसह अगदी सामान्य छोटे होतकरू कलाकारही आपल्या कलेची प्रसिद्धी त्यावर करू लागले. २००७ पासून फेसबुकवर पेज बनवता येऊ लागले. लगेच कलाकारांनी व संगीतसंस्थांनी आपली पेजेस काढली. त्यांवर आपल्या आगामी मैफलींची जाहिरात चटकन करता येऊ लागली. युजर्स ची वाढती संख्या पाहता खासगी वेबसाईट, टीव्ही किंवा वर्तमानपत्रापेक्षा अधिक लोकांपर्यंत नगण्य वेळेत आणि नगण्य खर्चात फेसबुक घेऊन जाऊ लागले. विशेष म्हणजे वेबसाईट डिझाईन करणाऱ्या जशा संस्था असत, तशा व्यक्तिगत पेजेस बनवून देणाऱ्या आणि पुढे ते सांभाळणाऱ्या व्यक्ती, संस्था पुढे आल्या आणि अधिक व्यवसायिकपणे पेजेस अस्तित्वात आली. सबस्क्राईब च्या ऑप्शन मुळे एखाद्या कलावंताचे चाहते त्याच्या पेजला फॉलो करून सहज त्याच्या कार्यक्रमांची माहिती मिळवू लागले.

ऑक्टोबर २०१०मध्ये फेसबुकने ग्रुप सुरु केले. समान आवडीनिवडी असणाऱ्या व्यक्ती आपापले ग्रुप बनवून त्यांत विचारांची देवाणघेवाण करू लागल्या. साहजिकच संगीताचे रसिक, कलाकार, शिक्षक यांचे असंख्य ग्रुप बनवले गेले. त्यात आपल्याला आवडलेले ऑडिओ — विडिओ, लेख शेअर होऊ लागले. विविध विषयांवर चर्चा होऊ लागल्या. आपल्या कार्यक्रमांची आमंत्रणे देता येऊ लागली, कार्यक्रम व दौऱ्यांचे फोटो शेअर करता येऊ लागले. ह्मञ्घह्म मध्ये फेसबुक ने इन्स्टाग्राम हे फोटो शेअर करणारे लोकप्रिय अँप विकत घेतले. त्यामुळे हे फोटो एडिट करून अधिक आकर्षकपणे शेअर करणे सोपे झाले. २०१५ मध्ये फेसबुक ने लाईव्ह स्ट्रीमिंग सुरु केले. त्यामुळे कुठलाही कलाकार आपल्या मैफलीत समोरच्या श्रोत्यांबरोबरच 'लाईव्ह' फेसबुकवर पाहता येऊ लागला. जगभरात कुठेही असलेले रसिक आपल्या मोबाईलवर त्याच वेळी त्या मैफलीचा आस्वाद घेऊ लागले. शास्त्रीय संगीताच्या दृष्टीने याला एक विशेष महत्व आहे, कारण ही उत्स्फूर्त कला आहे. रागसंगीत पूर्वरचित नसते, प्रत्यक्ष मैफलीत राग आकार घेतो आणि त्यामुळे 'लाईव्ह'ऐकवणे व ऐकणे ही कलाकार व रसिक या दोहोंसाठी अत्यंत उपयुक्त बाब आहे. आज कितीतरी कलाकार आपण अमुक दिवशी अमुक वाजता 'लाईव्ह'जाणार आहोत असा प्रचार करतात आणि त्या वेळी त्यांचे चाहते फेसबुकवर ऑनलाईन राहून त्यांच्या कलेचा आस्वाद घेऊ शकतात. याला नव्या युगातील ई—मैफिल म्हणता येईल. शिवाय तो विडिओ सेव्ह केल्यास मागाहून देखिल उपलब्ध होऊ शकतो. सध्या या फीचरचा वापर प्रसिद्धीपुरताच होत असला, तरी पुढे यातून अर्थार्जनाच्या शक्यता संभवतात. आजमितीस फेसबुकचे जगभरात ह्म.ञ्क अब्ज युजर्स आहेत आणि त्यातील २.०७ दशलक्ष भारतात आहेत. रागसंगीताला परदेशी भारतीयांचाही मोठा रसिकवर्ग आहे. ह्या सर्वांपर्यंत पोहोचायची युक्ती साधली तर त्याचा विधायक वापर संगीताच्या प्रसारासाठी करून घेता येईल. ही फेसबुक—क्रांती मागील दशकातील मोठ्या स्थित्यंतरांपैकी एक आहे. लोकांना सतत दिसत राहणे ही एका व्यावसायिक कलाकाराची गरज असते, ती फेसबुककडून अशाप्रकारे भागवली जाऊ लागली आहे.

२००५ च्या अखेरीस युट्यूब सुरु झाले. व्हिडिओ शेअर करता येणे हा या वेबसाईटचा मुख्य उद्देश. संगीत ही प्रामुख्याने श्राव्य कला असली तरी

व्हीसीडी, डीव्हीडी अशा माध्यमांतून ती दृक – श्राव्य (ऑडिओ – व्हिजुअल) होऊ लागली होती. मात्र केवळ मोठ्या संगीतकारांचेच असे व्हिडिओ निघत व पहिले जात. सामान्य कलाकारांसाठी अशी संधी मिळणे कठीण होते व स्वत: असा काही प्रयत्न करणे फार खर्चिक होते. मात्र मागील दशकात स्मार्ट फोन्स अगदी घराघरात पोहोचले, जे खूप स्वस्त देखिल होते. यांतील कॅमेरामुळे आपला व्हिडिओ आपण घरच्या घरीच शूट करणे अगदी सोपे आणि स्वस्त झाले. त्यांत किरकोळ एडिटिंग करण्याइतपत संगणकीय ज्ञान बहुधा सर्वांना येत गेले. त्यामुळे कलाकार आपल्या कार्यक्रमांचे, रचनांचे आणि नवनवीन कलाकृतींचे, प्रयोगांचे व्हिडिओ काढून युट्यूबवर प्रसिद्ध करू लागले. रसिकांनाही घरबसल्या किंवा प्रवासात, हवे तेव्हा, हवे तेथे, हवे ते संगीत ऐकणे–पाहणे सोपे झाले. ह्नञ्घह्न च्या अखेरीस युट्यूबनेही लाईव्ह स्ट्रीमिंग ही सोय उपलब्ध करून दिली. यामुळे मैफिली ग्लोबल झाल्या. जगभरात कुणीही त्या साईटवर जाऊन लाईव्ह मैफिली पाहू लागले. मे २००८ पासून १० भारतीय भाषांमध्ये युट्यूब उपलब्ध झाले. त्यामुळे ते अधिक लोकांपर्यंत पोहोचू लागले.

युट्यूबवर आपले स्वत:चे चॅनेल काढता येऊ लागल्याने आपल्या टार्गेट ऑडियन्सपर्यंत आपले व्हिडिओ पोहोचविणे सहज शक्य झाले. फेसबुकवर केवळ प्रसिद्धी मिळवता येते, मात्र २००८ पासून युट्यूबवर व्हिडिओ टाकून त्यातून अर्थार्जन करता येऊ लागले, हे या क्षेत्रातील एक पुढचे क्रांतिकारी पाऊल होय. व्हिडिओमधील मॉनेटायझेशन चा ऑप्शन एनेबल केला, आणि व्हिडीओ पाहणाऱ्यांची संख्या ठराविक मर्यादेपलीकडे गेली, की व्हिडिओसोबत जाहिराती येऊ लागतात आणि तो व्हिडिओ अपलोड करणाऱ्याच्या खात्यात युट्यूब पैसे जमा करते. अशा ऑनलाईन अर्थार्जनाच्या सोयीमुळे कित्येक कलाकार पूर्णवेळ विडिओ बनवून त्यातच करिअर करू लागले. ठिकठिकाणी होणाऱ्या युट्यूब फॅन–फेस्ट मुळे रसिक आणि कलावंत यांना प्रत्यक्ष एकमेकांना भेटता येऊ लागले आणि त्यांच्यातील भावबंध अधिक दृढ होऊ लागले, त्यांच्यातील संबंधांना एक आणखी पर्सनल टच येत गेला.

आजमितीस १८० दशलक्ष भारतीय व्यक्ती युट्यूब वापरतात. इकॉनॉमिक टाइम्सच्या २०१६ च्या अहवालानुसार भारतात दर महिन्याला ३.८ लक्ष व्हिडिओ युट्यूबवर अपलोड होतात, ६.४८ अब्ज व्यक्ती ते पाहतात आणि घ.घ कोटी नवीन सब्स्क्रायबर मिळवतात. या उलाढालीचा हा प्रचंड आवाका पाहता सशक्त कलेला योग्य तो प्रतिसाद मिळण्याची मोठी संधी युट्यूबच्या माध्यमातुन उपलब्ध झाली आहे ही फार महत्वाची बाब आहे. फेसबुक आणि युट्यूब या दोहोंनी रसिकांना अधिक चोखंदळ आणि कलाकारांना अधिक जागरूक बनवले. एखाद्या कलाकाराचा कार्यक्रम पहायला जावे की नाही याचा निर्णय त्याचे फेसबुक अकाउंट / पेज पाहून किंवा त्याचा युट्यूबवरील व्हिडिओ पाहून होऊ लागला. लाईव्ह स्ट्रीमिंग हे तर दुधारी शस्त्र आहे. त्यामुळे लाईव्ह गाताना कलावंताला अधिक जागरूक राहणे क्रमप्राप्त झालेय कारण त्याच्या कलाप्रदर्शनासोबतच त्याची छोट्यात छोटी चूकही तत्क्षणी जगभर जाऊ शकते याचे भान त्याला येऊ लागले. २००९ मध्ये व्हॉट्सघ्प मेसेंजर आले आणि फार वेगाने जगभर पसरले. फेब्रुवारी २००७ च्या आकडेवारीनुसार २० कोटी भारतीय हे घ्प वापरतात. मोबाईल नेटवर्क सर्व्हिस प्रोव्हायडरला काहीच रक्कम न देता, केवळ इंटरनेटवरून मोफत संदेश पाठवता येण्याच्या या सुविधेमुळे संदेशवहनाची सर्व परिमाणेच बदलून गेली. पूर्वीचा केवळ लिखित असणारा मेसेज आता ऑडिओ आणि व्हिडिओ स्वरूपातही आला. साहजिकच सांगीतिक संदेश पाठवणे शक्य झाले. एस.एम.एस चे एम.एम.एस (मल्टिमीडिया मेसेज) झालेच होते. व्हॉट्सघ्प वर ग्रुप बनवता येऊ लागल्यावर संगीत क्षेत्राशी संबंधित मंडळींनी असे ग्रुप बनवून त्यांचा विधायक वापर सुरु केला. त्यांवर चर्चा घडू

लागल्या. पुढे व्हॉट्सघ्पवर पीडीएफ डॉक्युमेंट देखील पाठवता येऊ लागले, ज्यामुळे संगीतातील मोठमोठी पुस्तके डिजिटल स्वरूपात मोबाईलवरच मिळू लागली. रेकॉर्डिंगच्या आधी गायक — वादकांना गाण्याचे शब्द, चाल आणि संगीत/नोटेशन पाठवणे पूर्वी कितीतरी क्लिष्ट होते. कॅसेट रेकॉर्ड करणे तरी काहीसे सोपे होते मात्र सिडींनी कॅसेटला बाद केलेच होते. चाल रेकॉर्ड करून त्याची सिडी बर्न करून ती एखाद्या व्यक्तीसोबत किंवा कुरिअरने पाठवणे म्हणजे कितीतरी किचकट काम होते. मेसेंजरमुळे हे कितीतरी पटीने सोपे झाले. आणि कितीही बदल झाले तरीसुद्धा लगेच ते एकमेकांना पाठवता येऊ लागले. विशेष म्हणजे आपल्या हातात खुळखुळणाऱ्या, साधारण ५ हजारांपासून मिळणाऱ्या स्मार्ट फोनवरच ही सर्व कामे लीलया करता येऊ लागली. व्हॉट्सघ्पवर व्हिडिओ कॉलिंग मुळे संगीत शिक्षणदेखिल शक्य झाले

'किंडल' सारख्या डिजिटल बुक स्वरूपामुळे ज्ञानप्रसार सोपा झाला. कार्यक्रमाची जाहिरात इमेजफाईल बनवून अधिक आकर्षकपणे केली जाऊ लागली आणि खूप मोठ्या संख्येतील लोकांपर्यंत स्वल्प खर्चात आणि नगण्य वेळेत पोहोचू लागली. कार्यक्रमाची जाहिरात टेक्स्ट आणि इमेज याहीपुढे जाऊन आता छोट्या व्हिडिओ स्वरूपात येऊ लागली आहे. पुष्कळ कलाकार स्वत:चे किंवा साथीदार — मित्रांचे साधारण २०—३० सेकंदांचे व्हिडिओ शूट करून ते टिझर म्हणून पाठवू लागले आहेत, ज्यामुळे कार्यक्रमाविषयी उत्कंठा वाढते आणि त्याचे पर्यवसान श्रोतृसंख्येत दिसू शकते. पूर्वी एखाद्या मोठ्या कार्यक्रमापूर्वी कलाकारांची पत्रकार परिषद होत असे. तिची जागा हल्ली फेसबुक लाईव्ह आणि टिझर व्हिडिओज घेऊ लागले आहेत, असे म्हणणे अतिशयोक्ती होणार नाही. डिजिटल क्रांतीमुळे संगीतकला स्थल—कालाची बंधने भेदून पार गेली.

रसग्रहण आणि समीक्षण :

तांत्रिक प्रगतीचा संगीताच्या रसिक पक्षावरसुद्धा फार मोठा परिणाम झाला. पूर्वी जे जे काही मौखिक स्वरूपात होते, त्या सर्वांना आता तंत्रज्ञानाची जोड मिळाली. आपल्या आवडत्या/नावडत्या कलाकार/कार्यक्रम/संस्था यांविषयी ब्लॉग किंवा फेसबुकवर लिहिले जाऊ लागले. युनिकोड आणि गुगल ट्रान्सलिटरेशन (२००७) यांमुळे भारतीय भाषांत ब्लॉगिंग अधिक सुलभ झाले. नव्या रसिकांची जडणघडण होण्यासाठी आणि योग्य कलेला प्रोत्साहन मिळण्यासाठी रसग्रहण आणि निष्पक्षपाती समीक्षणाची नितांत आवश्यकता असते, ती या पद्धतीने पूर्ण होऊ लागली. केवळ संगीताच्या रसग्रहणाला वाहिलेले ब्लॉग, पेजेस, ग्रुप अस्तित्वात आले. आपण पाहिलेल्या व्हिडिओवर तात्काळ प्रतिक्रिया देणे शक्य झाले. आवडलेले व्हिडीओ शेअर करणे सोपे झाले. एखाद्या व्हिडिओला मिळणाऱ्या लाईक च्या संख्येवरुनही त्याची गुणवत्ता ठरवली जाऊ लागली. अर्थात याचा सकारात्मक आणि नकारात्मक देखिल वापर होऊ लागला कारण या वेबसाईट व्हिडीओ अधिकाधिक लोकांपर्यंत पोहोचावा यासाठी पैसे आकारू लागल्या. त्यामुळे लाईक व व्ह्यूजची संख्या ही अशा काही मार्गामुळे वाढली आहे कि निव्वळ गुणवत्तेमुळे, हे पारखणे कठीण झाले आहे. परंतु एकंदरीत पाहता तांत्रिक प्रगतीमुळे रसिकांच्या प्रबोधन प्रक्रियेला नवे वळण मिळाले आहे, हे निश्चित.

संगीत शिक्षण :

भारतीय संगीत ही गुरुमुखी विद्या असल्याने तंत्रज्ञानातील प्रगती संगीत—शिक्षणाच्या मूल्यात फार काही प्रभाव टाकू शकणार नाही, मात्र तिच्या स्वरूपात नक्कीच परिवर्तन घडवू शकते. याची चुणूक मागील दशकात ऑनलाईन शिक्षणाच्या सुरुवातीमुळे मिळाली आहे. स्काईप २००३ मध्ये लॉंच झाले ते विविध स्वरूपांत परिवर्तित होत होत आता मोबाईलवरही उपलब्ध झाले आहे. त्यावर जगाच्या कुठल्याही टोकावरील गुरुशिष्य संगीतविद्येचे आदानप्रदान करू शकतात. त्यांचे व्हिडीओ कॉन्फरन्सिंग सेशन सेव्ह करून जसेच्या तसे पुन्हा पाहता येत असल्याने शिष्याला काही शंका असल्यास त्या दूर होऊ शकतात. व्हॉट्सऍप

ने देखिल २०१६ च्या अखेरीस विडिओ कॉलींग सुरु केले. काही मान्यवर गुरु–शिष्यांच्या अशा तालमी हल्ली यूट्यूबवरही अपलोड केल्या जातात. उदाहरणार्थ पं.गजाननबुवा जोशी हे आपले शिष्य पं.उल्हास कशाळकर, पं.शुभदा पराडकर यांना शिकवताना कॅसेटवर रेकॉर्ड केलेले ऑडिओ आज युट्युबवर उपलब्ध झाले आहेत. गजाननबुवा आज हयात नसूनही त्यांच्या अमूल्य तालमीचा लाभ या माध्यमातून अनेक विद्यार्थी व रसिक घेत असतात. अप्रत्यक्षपणे हेही संगीत शिक्षणच आहे. मोबाईल स्मार्ट झाल्यापासून त्यांवर रेडिओसुद्धा घ्प स्वरूपात ऐकता येऊ लागला असल्याने रेडिओच्या अनेक शैक्षणिक आणि सांगीतिक कार्यक्रमांचा आस्वाद विद्यार्थी व रसिकांना घेता येत आहे.

दुसरा महत्वाचा फायदा असा की संगीतातल्या काही खास गोष्टी, ज्या मुख्य शिक्षणाला पूरक अशा असतात, त्या व्हिडीओ स्वरूपात काही गुरु प्रसिद्ध करतात. त्यांवरून अनेक विद्यार्थी ज्ञान मिळवतात, आणि गुरूंनाही त्यातून प्रसिद्धी व अर्थार्जन हे दोन्ही फायदे मिळू शकतात. ऑनलाईन क्लासेस सोबत पॉडकास्ट आणि वेबिनार कोर्सही सुरु झाले आहेत. मात्र वर उल्लेख केल्याप्रमाणे संगीत गुरूंसमोर बसून ग्रहण करावयाची विद्या असल्याने प्रत्यक्ष गुरुची जागा हे व्हिडीओ घेऊ शकत नाहीत. शिवाय इंटरनेटवर उपलब्ध साहित्य खूप जास्त प्रमाणात असल्याने योग्य त्याच व्हिडिओची निवड करणे कठीण आहे आणि नवख्या माणसाची दिशाभूल होण्याचा धोकाही निर्माण झाला आहे.

रिॲलिटी शोज :

माध्यमांच्या वाढत्या प्रभावाबरोबरच त्यांच्यावर दर्शकांच्या सहभागातून सादर होऊ शकणारे मनोरंजनात्मक कार्यक्रम सादर होऊ लागले, ज्यांना 'रिॲलिटी शो' अशी संज्ञा आहे. १९९५ मध्ये गायक सोनू निगम झी टीव्ही वरून सारेगामापा हा कार्यक्रम घेऊन आला आणि संगीतस्पर्धांचे एक नवे युग भारतात सुरु झाले. मागील दशकाबद्दल बोलायचे तर, २००६ पासून सारेगामाचे १४ सीझन्स झाले आहेत. २००४–०५ पासून इंडियन आयडॉल ची त्यांत भर पडली, ज्याचे आजवर ७ सीझन्स झाले. सर्वच मुख्य टीव्ही चॅनेल्स वरून असे कार्यक्रम निघू लागले. त्यांतून खरेच काही प्रतिभावान कलाकार मिळाले. खरे तर हे कार्यक्रम टॅलेंट हंट म्हणून सुरु झाले. मात्र त्यांच्यात व्यावसायिकता प्रमुख असल्याचे कालांतराने लक्षात येऊ लागले. ते काहीही असले, तरी टीव्हीवर मिळणाऱ्या प्रसिद्धीचा प्रचंड मोठा आवाका पाहता उदयोन्मुख कलाकारांचा त्याकडे ओढा वाढतो आहे. रिॲलिटी शोजने खूप मोठा मंच, चटकन प्रसिद्धी, छोट्यमोठ्य अल्बम मधून संधी आणि 'महागायक' सारख्या पदव्या देऊन काहीशा अर्धकच्च्या गायकांची मोठी फौज तयार केली. मात्र संगीत आणि सिनेविश्वात इतके काम उपलब्ध आहे किंवा नाही याच्याशी सोयरसुतक ठेवले नाही. त्यामुळे प्रसिद्धी आणि मोठ्य स्टेजची चटक लागलेल्या या होतकरू कलाकारांना त्यानंतरचा संघर्ष स्वत:च करावा लागला आणि एकूणच स्पर्धा वाढली, काही वेळा ती नको इतक्या खालच्या पातळीवर गेली आणि जीवघेणी ठरू लागली.

वितरण (डिस्ट्रिब्युशन):

मागील दशकात ऑडिओ सीडींचा वापर कमी कमी होत गेलेला दिसून येतो. त्यामुळे सर्व व्यवहार पेन ड्राइव्ह किंवा तत्सम डिजिटल गॅजेट्स मध्ये होऊ लागले आणि सध्या त्यांचाही वापर कमी होऊन सर्व कामे ऑनलाईन होऊ लागली. सध्या म्युझिक रिलीज पुरताच सीडीचा वापर दिसून येतो, मात्र सीडी विकत घेऊन कुणीच ऐकत नाहीत. त्या त्या म्युझिक कंपनीच्या वेबसाईटवर किंवा युट्यूब चॅनेलवर जाऊन ती गाणी ऐकली जातात. पूर्वी अनेक व्यासंगी रसिक आपल्याला हव्या त्या माध्यमात संगीताचा खासगी संग्रह बाळगत असत. आता काही वेबसाईट्स ने हे काम स्वत:कडे घेतले आहे आणि त्यामुळे इंटरनेट वापरणाऱ्या कुठल्याही रसिकाला जगातील कुठलेही संगीत विनासायास उपलब्ध झाले आहे.

सीडी हद्दपार होण्याच्या मार्गावर असून पुढे केवळ संग्रहालयांतूनच त्या आढळतील अशी परिस्थिती आहे.

सिंगल आणि कव्हर :

मागील काही वर्षांत ६–७ गाणी असणारा संपूर्ण अल्बम रिलीज करण्याची पद्धत काहीशी नामशेष होऊ पाहते आहे. त्याऐवजी एकच एक गाणे बनवून ते ऑनलाईन रिलीज करतात, ज्याला सिंगल असे म्हणतात. सामान्यपणे त्यावर एक सुंदरसा विडिओ बनवून आपल्या युट्यूब चॅनेल वरून हे गाणे डाउनलोड करू दिले जाते, रेडिओवरून ऐकवले जाते आणि टीव्हीच्या नवनवीन म्युझिक चॅनेल्सवरून प्रसारित केले जाते. त्यामुळे एखादी थीम घेऊन पूर्वी जसा अल्बम बनत असे, ती पद्धत आता बदलत गेली आहे. बऱ्याचदा नवखे कलाकार स्वखर्चाने (जो हल्ली अल्पच असतो) सिंगल्स करू लागले आहेत. सुप्रसिद्ध कलाकारांची सिंगल्स म्युझिक कंपन्या काढू लागल्या आहेत. अजून एक प्रवाह मागील दशकात रूढझाला, तो म्हणजे, आधीच प्रसिद्ध असलेले, मोठ्या कलावंताचे एखादे गाणे पुन्हा आपल्या आवाजात रेकॉर्ड करून प्रसिद्ध करणे, ज्याला कव्हर व्हर्जन किंवा फक्त कव्हर असे म्हणतात. यामुळे नव्या कलाकाराचे लॉन्चिंग सोपे झाले आहे. सिंगल मधील गाणे पूर्णत: नवे असते, त्याचे शब्द–संगीत हे उत्तम असले तरच गायकाचे कसब लोकांपर्यंत चांगल्या पद्धतीने पोहोचू शकते. मात्र शब्द किंवा चाल चांगली नसण्याचा धोका कव्हर मध्ये नसतोच, कारण आधीच लोकप्रिय असलेले गाणे कव्हरसाठी निवडलेले असते. त्यामुळे सर्वात सुरक्षित असा हा मार्ग नव्या कलाकाराला चोखाळता येतो.

एकूण पाहता मागील दशक हे तंत्रज्ञानातील प्रगतीमुळे अनेक बाबतींत क्रांतिकारक ठरले आहे. संगीतविश्वाचे बाह्यांग त्यामुळे ढवळून निघाले आहे. कलेची गुणवत्ता आणि अभिजातपणा टिकवून ठेवण्याचे आव्हान अशा परिस्थितीत कलाकारांसमोर उभे आहे. कलाकार आपल्या सद्सद्विवेकबुद्धीने तंत्रज्ञानाचा वापर करतील आणि येणारा काळ संगीताच्या दृष्टीने आणखी उज्ज्वल करू शकतील अशी आशा बाळगून या आव्हानाला सामोरे जायला हवे.

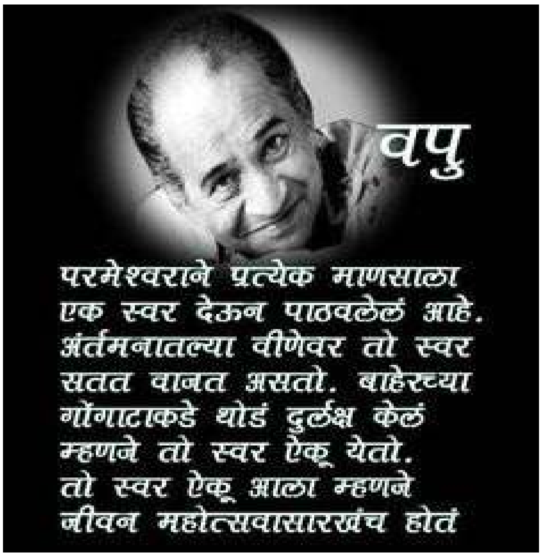

कु. श्रुती पांडवकर
नागपुर.
shrutipandaokar@gmail.com

आजच्या काळातील संगीत शिक्षण, शिक्षक आणि विद्यार्थी

भारतीय संदर्भामध्ये संगीताला सर्वोत्तम, उत्कृष्ट कलेच्या स्वरूपात मान्यता आहे. प्राचीन काळापासून अगदी आजपर्यंत संगीताच्या क्षेत्रात अनेक चढ उतार आले. आणि त्यानंतरचे त्याचे हे विकसित रूप आपल्यासमोर आले. संगीताचे कलात्मक रूप टिकवून धरण्यात संगीताच्या शैक्षणिक पैलूचे महत्व नाकारता येत नाही. आपण जर संगीताच्या ऐतिहासिक पृष्ठभूमीवर नजर टाकली तर तसे पाहता संगीत शिक्षणाचीपरंपरा वेदिक काळापासूनच चालत आलेली दिसते.वैदिक काळात संगीताचे शिक्षण गुरूशिष्य परंपरेनुसार तर मोगल काळात घराण्याच्या माध्यमातून दिले जात असे. आणि आजच्या काळात ते विद्यालय, महाविद्यालय विद्यापीठ तसेच संगीत विद्यालय अशा विविध पातळयांवर दिले जात आहे. आजच्या काळात शिक्षणतज्ज्ञ आणि संगीतज्ञांन संगीताला तत्वज्ञान, इतिहास, मानसशास्त्र, वैद्यकशास्त्र इत्यादी अन्य विषयांशी संबंध जोडण्याचा यशस्वी प्रयत्न करीत आहेत. स्वातंत्र्यप्राप्ती नंतर भारतीय कला—संस्कृतीला लोप न पावू देण्यासाठी तसेच तिचा विकास करण्यासाठी सरकारनेसुध्दा बरेच प्रयत्न केले. त्याचा परिणाम म्हणून संगीतप्रेमी श्रोते आणि विद्यार्थी यांच्या गुणात्मक संख्येमध ये वाढ झाली आहे. पण तिची गुणवत्ता मात्र घसरत चालली आहे. या वस्तूस्थितीचा आपज्या संगीतज्ञांनी समस्येच्या स्वरूपात प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष स्वीकार केला आहे.

कोणत्याही विषयाचे विकसित स्वरूप हे विषयाची गुणवत्ता आकण गुणात्मक संख्या या दोन्ही पैलूंशी निगडित असते. या दोन्ही पैलूंच्या विकासा मधून विषयाचे महत्व आणि लोकप्रियता दिसून येते, परंतु या सर्व मुद्दयांच्या मुळाशी विषयाचे शैक्षणिक स्वरूप नेमके कसे आहे, हे अत्यंत महत्वाचे आहे आणि त्याच्याच आधारावर आकलन होणे शक्य आहे. आपण जर वर्तमान काळातील संगीताकडे या दृष्टीकोनातून पाहिले तर संगीत शिक्षणाशी संबंधित काही पैलू आपल्यासमोर येतात, ते असे — शिक्षक, विद्यार्थी आणि प्रचलित शिक्षणपध्दती किंवा अभ्यासक्रम

कोणत्याही विषयाच्या शिक्षणामध्ये सर्वप्रथम त्याचा प्राथमिक स्तर म्हणजेच त्याचा पाया मजबूत असणे सर्वात महत्वाचे मानले गेले आहे, मग ते साहित्य असो वा कला किंवा अन्य कोणताही विषय. संगीतामध्ये या गोष्टीचे फार मोठे महत्व आहे, की त्याचा अभ्यास म्हणजेच रियाज़ कसा आहे. जोपर्यंत विद्यार्थ्यांचा प्राथमिक पातळीवरचा रियाज़ म्हणजेच स्वरांचा, मंद्र सप्तकाचा, अलंकारांचा अभ्यास तसेच हाताने टाळी देऊन म्हणजेच ठेका आणि लयकारी पक्की होत नाही, तोपर्यंत रागदारीची तालीम अपुरीच राहते.

आपल्या शिक्षण पध्दतीमध्ये शालेय शिक्षणात पाचव्या वर्गापासून संगीताचे शिक्षण दिले जाते. पण शालेय शिक्षणातून संगीताच्या शिष्यांना घडविणे अतिशय कठीण आहे. कारण एकाच वेळेस कितीतरी जवळपास ५० ते ७० विद्यार्थ्यांना संगीत शिकविणे फार चॅलेंजींग आहे. त्यानंतर इयत्ता अकरावीत विद्यार्थ्यांकडून सा रे ग म चा रियाज़ करवून घेण्यापासून परत सुरूवात होते. तेव्हा विद्यार्थ्यांनी रियाज़ करावा की शिक्षकांनी

अभ्यासक्रम पूर्ण करावा? असा प्रश्न आपसूकच निर्माण होतो.

आजच्या युगात अनेक सोयी उपलब्ध आहेत. संगीत आणि तंत्रज्ञानाचा उत्तम संबंध आपण आजच्या काळात बघु शकतो. अगदी आजच्या काळातील संगीताची शिक्षणपध्दती ही पूर्वीच्या शिक्षणापेक्षा वेगळी झाली आहे. आजची पीढी ही शास्त्रीय संगीताकडे वळू लागली आहे. आणि ह्या काळात अतिशय उत्कृष्ट अशी गुरूंची पिढी आपणांस बघायला मिळते आहे. गुरूशिष्य परंपरा जरी आज त्या प्रमाणात अस्तित्वात नसली तरी गुरूंकडून संगीताची तालीम घेण्याच्या पध्दती मधेच तो काय बदल झालेला आपण बघू शकतो. आधी गुरूगृही शिष्य राहून संगीताची तालीम घेत असे. आता पूर्वीप्रमाणे वेळेच्या अभावाने गुरूगृही राहून शिक्षण घेण्याचे अवघड झालेले दिसून येते. त्यावरील उत्तम उपाय दूरस्थ शिक्षण पध्दती म्हणजेच ऑनलाईन शिक्षणपध्दती. आजच्या काळात आपण अनेक संगीत विद्यालय सुध्दा संगीत शिक्षणाच्या सेवेत रूजु असलेले आपण बघतो. यामुळे समाजात शास्त्रीय संगीताबद्दल जागरूकता निर्माण होताना दिसून येते.

संगीत या विषयाला व्यवस्थापनाबरोबर जोडले गेले तर त्याचे व्यावसायिकीकरण होऊन संगीत शिक्षणाला वेगळी दिशा प्राप्त होऊन त्यातून अनेक रोजगार निर्माण होऊ शकतात म्हणजेच संगीताच्याच क्षेत्रात संगीत—संयोजक, निर्देशक, शिक्षक, ध्वनीमुद्रणाचे तंत्र जाणणारे, जाहिरात प्रसारणसंबंधातील तसेच परफॉरमींग आर्टिस्ट घडविण्याच्या दृष्टीने काही अभ्यासक्रम तयार करून ते राबविण्यात यावे.

विद्यार्थ्यांचा संगीताच्या सैध्दांतिक तसेच प्रात्यक्षिक असा दोन्ही पैलूंवर सारखाच अभ्यास असला पाहिजे. संगीताला विषयाच्या दृष्टीने समृध्द बनविण्याकरिता अभ्यासक्रमाबरोबरच शिक्षक आणि विद्यार्थी यांची मोठी आणि महत्वाची भूमिका असते. कारण हा विषय कलेशी निगडित असा आहे ज्याच्यासाठी धैर्य, चिकाटी, संयम, समर्पण भावना इत्यादिंची गरज असते. संगीत क्षेत्रातील दिग्गजांचे असे सांगणे असते की शिक्षा, शिक्षण, दीक्षा — गंडाबंधन आणि परिक्षा असे तिनही पैलू मोठे महत्वाचे असतात. आजकालचा अनुभव असा ओह, की महाविद्यालय, विद्यापीठ किंवा संशोधन इत्यादिंमधे विद्यार्थी कुठेही मागे नाहीत, पण पूर्वीपेक्षा गुणवत्ता मात्र घसरलेली आहे. कारण शिक्षक आणि विद्यार्थी दोघांचाही हेतू हा केवळ पैसे कमविणे इतकाच, मान सन्मान, लोकप्रियता, फेम, प्रसिध्दी इतकाच आहे. पण कुठेतरी ह्या सर्वाला विराम देणे काळाची आणि संगीत संवर्धनाची गरज आहे.

आपण जेव्हा आपल्या कला— संस्कृतीबद्दल चर्चा करतो, तेव्हा संगीताचा परंपरागत खजिना अनमोल मानून तो सांभाळून ठेवून त्याचे रक्षण करण्याची भावना महत्वाची असते. परंतु त्याच वेळेस आपण या मुद्दयावर चिंतन केलेच पाहिजे की ह्या परंपरागत कोशामधे नाविन्य आणण्याकरीता प्रयोगात्मक दृष्टिकोन जर स्विकारला नाही तर हा कोश नष्ट होईल. शिक्षक व विद्यार्थी हा असा वर्ग आहे की ही परंपरा अशीच पुढे नेत असताना नवनवीन प्रयोगही आत्मसात करण्याची या वर्गाची जबाबदारी आहे, कारण भारतीय संस्कृतीचे प्रमुख वैशिष्ट्य सर्वांना आपल्यामधे सामावून घेणे आहे. कोणा दुसऱ्यामधे समाविष्ट होणे नाही.

संगीत - एक मनोवैज्ञानिक दृष्टि

श्रीमती स्वतंत्र जैन
भोपाल

संगीत एक मौन कविता है, जिसे शब्दों की जरूरत नहीं है। संगीत एक सन्नाटे को मुखरित करता है। मौन को मुखर करना, सन्नाटे को शब्द देना, ये संगीत का मनोवैज्ञानिक तथ्य है। इस मुखरता में, इन शब्दों में सहजता है, सरलता है। इन शब्दों के अर्थ में स्वरों में, भावनात्मक, हृदयात्मक तारतम्य है। जो एक मानस पटल पर रेखा चित्र अंकित करता है। यह रेखाचित्र अमिट होता है। संगीतकार खुलकर स्वीकार करते हैं कि रेखाचित्र मानव की संवेदना को स्पष्ट दर्शाते हैं । संगीत के माध्यम से छिपा हुआ प्रेम जगजाहिर करते हैं। चाहे वह प्रेम मानवीय हो अथवा भक्तिरस से ओत–प्रोत ईश्वरीय प्रेम हो। प्रकृति से हो अथवा पक्षियों के कलरव से। संगीत एक माध्यम है अपनी भावनाओं को सहजता से व्यक्त करने का।

शायद से सहजता, ये सुरीलापन हमने प्रकृति से ही चुराया है। पक्षियों की चहचहाहट, उनके कलरव से उधार लिया है; और उसे मानवीय रूप देकर जीवन्त कर दिया है। जन साधारण तक पहुँच दिया है। संगीत का कोई भी रूप हो, उसकी कोई भी विधा हो, प्रत्येक में सौन्दर्य की अभिव्यंजना होती है। यदि यह अभिव्यंजना भावना प्रधान है तो वह प्रेरक, सृजनात्मक तथा दिशा देने वाली होती है। यदि इस अभिव्यंजना में वासना का विष घुल गया तो वह विध्वंसकारी, विघटनकारी, एवं मनोरोगों व अपराधों को जन्म देनेवाली बन जाती है। संगीत के क्षेत्र में पं. जसराज पं. विश्वमोहन भट्ट, पं. हरिप्रसाद चौरसिया, पं. शिवकुमार शर्मा। संगीत के माध्यम से सृजनात्मक कार्य हो, इसमें सतत प्रयत्नशील हैं। संगीत की कोई भी विद्या, चाहे वह नृत्य हो, वादन अथवा गायन, सभी में अपनी स्वयं की एक मधुरता है, चंचलता है, सरलता है। मयूर के नृत्य को हमने अपनाया है। कोयल के गायन की धुन को अपना बना लिया। प्रकृति की सुंदरता को वाद्य के माध्यम से, वादन में उतारा है। मेघों की गड़गड़ाहट और बिजली की चंद्राकृती चंचलता को हमने अपने वादन में गूँथकर सार्वजनिक कर दिया है।

ग्रामीण ताल पर थिरकते लोकगीत अपनी आंचलिकता को मुखरित करते हैं। चाहे वह हिन्दुस्थानी संगीत हो अथवा कर्नाटकी, सबकी अपनी अलौकिक छवि; संस्कृति, गायन–वादन व नृत्य में स्पष्ट झलकती है। कर्नाटकी संगीत में हमारे माटी के मटकों में भी जान आ जाती है। गूँगे मटके भी मुखरित हो जाते हैं। तथा मानवीय राणी में स्पष्ट बोलते नज़र आते हैं।

भारतीय संगीत के अतिरिक्त पाश्चात्य संगीत भी अपनी मौलिकता को अनूठे ढंग से ही प्रस्तुत करता है। संगीत तो संगीत है। मानव तो मानव ही है। पॉप संगीत हो या रॉक संगीत। संगीत अपने आप में पूर्ण है। चाहे वह कहीं का भी, किसी भी क्षेत्र का हो। स्वप्न यही है कि कोई भी संगीत, विशेषकर हमारा भारतीय संगीत अपनी मौलिकता पर कायम रहे, अटल रहे। उस पर पाश्चात्य देशों का प्रभाव न पड़े। ताकि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हमारी संस्कृति, सभ्यता पर आँच न आये। इसे सुदृढ़ बनाने में आज भी अनेकों महान संगीत की विभूतियाँ अपना जम–खम लगाने में निरन्तर लगी हुई है।

हृदय और मन को अभिव्यक्त करना मनुष्य

का एक सहजात धर्म है। मानव मन की अभिव्यक्ति के लिये संगीत एक सशक्त माध्यम है। अपनी चेतना को एक साकार रूप देने का सबल माध्यम। दुख और वेदना की स्थिति, परिस्थिति में भी मानव मन गुनगुनाता है। एकान्त में उनके स्वर मुखरित हो जाते हैं, जो दुखी मन को शांत करने में पूर्णतः सफल होते हैं। संगीत रस,रास और रहस्य को प्रकाशित करता है। रस याने नवरस, रास याने कृष्ण की रासलीला तथा रहस्य याने आत्मा, परमात्मा की खोज। संगीत में लैकिक, पारलौकिकता का सम्मिश्रण है। यह मानव के मन के ऊपर निर्भर करता है कि वह रस ले अथवा रास। या वह रहस्य की तरफ प्रेरित हो। सभी में संगीत की एक महत्वपूर्ण भूमिका छिपी हुई है। संगीत से मानव या मानवेतर दोनों पृष्ठभूमियों को स्पष्ट देखा जा सकता है। इसमें जीवन दर्शन है। जीवन जीने की कला छिपी हुई है। स्त्री की मनोव्यथा को व्यक्त करने का अनूठा उपकरण है संगीत। जैसे—सइयां, नैनों की भाषा समझे ना। अथवा अरी ऐरी आली पिया बिन। पिया बिन, पिया बिन बतियों माने न, माने न, माने न। इसमें हृदय की मासूमियत झलकती है। संगीत एक ऐसा वीर है, जो सीधे हृदय पर जाकर उतरता है।

आधुनिक युग में संगीत की अपनी स्वाभाविक छवि घूमिल होते दिखाई दे रही है। फिल्मों और टि.व्ही. के माध्यम से संगीत का नैसर्गिक रूप धुंधला होता दिखाई दे रहा है। फिल्मों के रेशमी जाल में प्राकृतिक संगीत का जीवन चक्र, संघर्ष—चक्र में फँसकर छटपटा रहा है। परंतु कई संगीतकार उसे पुनः नैसर्गिकता में लाने के सपनों को संजोये हुये हैं। आनेवाले कल पर उनको भरोसा है। मरूस्थल की रेत में भटके हुये काफिले अवश्य आगामी समय में सोचने पर विवश हों। संगीतकारों की भविष्य—दृष्टि अवश्य ही उन्हें प्रेरित करेगी। क्योंकि जीवन का आरोह—अवरोह इसी संगीत की मनोवैज्ञानिक दृष्टि में समाहित है।

संगीत के क्षेत्र में गज़लों का युग

डॉ. राहुल एम. भोरे
(विभागाध्यक्ष संगीत विभाग)
श्रीमती रेवाबेन मनोहरभाई पटेल
महिला कला महाविद्यालय, भंडारा
Srujan.bhore3@gmail.com

प्रस्तावना : 'गज़ल' अरबी भाषा का स्त्रीलिंगी शब्द है, जिसका अर्थ है– 'प्रेमपत्र से वार्तालाप'। उर्दु और फारसी की कविता का एक विशेष प्रकार गज़ल कहलाता है। एक गज़ल में कम से कम पांच और अधिक से अधिक ग्यारह शेर होते है। सारे शेर एक ही 'रदीफ' और 'काफिया' में होते है और प्रत्येक शेर में स्वतंत्र भाव होता है। गज़ल का प्रथम शेर 'मत्ला' और अंतिम 'मक्ता' कहलाता है। मक्ते में शायर अपना उपनाम रखता है। गज़ल का संग्रह 'दिवान' कहलाता है।

श्रृंगारपूरक होने के कारण काव्य काव्य–रसिकों और संगीतानुरागियों को गज़लें परम प्रिय रही है और सुफियों को भी। काजी हमीदुद्दीन नागौरी के कव्वाल महमुद ने सुलतान शम्सुदिन उल्ततमिश १२१०–१२३५ को गज़ल गाकर मुग्ध कर दिया था। गयासुद्दिन बलबन १२६५–१२८७ के पुत्र मुहम्मद ने शैख बहाउद्दिन जकरिया के पुत्र शैख कदवा को अपनी सभा में निमंत्रित किया था, उस समय अरबी गज़ल गई गई थी। कैकुबाद १२८७ – १२९० के युग में तो गली गली गज़ल गायक उत्पन्न हो गए थे। जलालुद्दिन खिलजी के युग में अमीर खुस्रो, रूपवती गायिकाओं और सुंदर किशोरों की छवी का वर्णन अपनी गज़लों में करतें थे। अल्लाउद्दिन खिलजी १२९६–१३१६ के युग में मुहम्मूद मूहम्मद और खुदादी प्रसिध्द गज़ल गायक थे। कुतुबुद्दीन खिलजी १३१६–१३२०, गयासुद्दीन तुगलक १३२०–१३२५ आधेर मुहम्मद तुगलक १३२५–१३५१ के युग में भी गज़ल लोकप्रिय थी। फिरोज तुगलक १३५१–१३८८ के युग में भी गज़ल का सम्मसन था। बहमनी सुलतान मुहम्मद शाह प्रथम के दरबार में खुसरो की गज़ल गानेवाले तीनसौ गायक थे।

सन १५३५ में बैजू ने हुमायू को फारसी गज़ल गाकर ही रिझाया था। अकबर का संरक्षक वैरम खॉ रामदास जैसे कलावंतो की गज़लों की शैली पर ही मुग्ध था। बैजू और रामदास जैसे कलावंतों का प्रभूत अधिकार गज़ल गाने पर भी था। जंहागीर ने गज़ल–गायक शैकी को 'आनंद खॉ' की उपाधी दी थी।

तात्पर्य, यह है की आज गज़ल को संगीत की दृष्टि से भले ही हेय समझा जाने लगा हो, परंतू वास्तविक रूप में गज़ल गाना सरल बात नही है। संगीत मर्मज्ञ बादशाहो और सूफियों ने गज़ल का सम्मान सदैव किया है। गज़लों में प्रयोज्य प्राय: सभी छंद भारतिय छंदशास्त्र के अंतर्गत आते है और भारतिय रागों की शुध्दता की रक्षा करते हुए गज़ल गानेवाले गायक विशिष्ट परंपराओं में होते रहे है।

संगीत के प्राचीनतम एवं प्राचीन ग्रंथों को पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि संगीत शब्द का अर्थ ही है, ईश्वर आराधना करके निर्वाण की प्राप्ति करना अर्थात्संगीत व्दारा ईश्वर के गुणों का गान करके इस लोक में सुख व परलोक में मोक्ष की प्राप्ति। परन्तु आज युग और आ गया है। आज हम देखते है की घर–घरमें, नगर अधिक नगर में, गांव–गांव में श्रृंगार प्रियता बढती जा रही है। यह प्राकृतिक नियम है की भक्ति एवं श्रृंगार एक दूसरे के विरोध तत्व है, भक्त श्रृंगार प्रिय नहीं होगा और श्रृंगार प्रिय कभी भक्त नही

होगा। श्रृंगार से कामुकता जागृत होती होती है। यही कारण है कि आज घर–घर में अश्लील साहीत्य पढ़ने, देखने का इतना अधिक प्रचार बढ है।

आज हम देखते है कि सामाजिक अथवा शिक्षाप्रद या जिनमें शास्त्रीय गायन को प्रधानता हो, ऐसे चित्र कम चलते है। इनके लिये समाज तो दोषी है ही पुरन्तु हमारी सरकार पहले दोषी है जो इन सब पर प्रतिबंध नही लगाती। पहले रेडीओ स्टेशनो से आकाशवाणी केन्द्रों से वर्ष में कम से कम एक बार शास्त्रीय गायन का निरंन्तर लगभग एक सप्ताहतक कार्यक्रम चलता था जिसमें भारत के चोटि के कलाकार भाग लेते थे। आज तो सप्ताह में एक दिन भी कभी शास्त्रीय कार्यक्रम का प्रसारण हो जाता है। वह भी अधिकांश रिकार्डीग होता है।आज आकाशवाणी एंव दूरदर्शन केंद्रो पर भी कवी संम्मेंलन, मुशायरो आदि का आयोजन होता है। और कविताओं में कैसी प्रस्तुत की जाती है जिनमे न छंद शास्त्र ना पिंगल की छाया होगी। आज की कविताएँ तो ऐसी प्रतित होती है जाने कोई गद्य का पाठ पढ़ रहा हो। वह भी हसने हसाने से संबधित। वास्तव मे देखा जाय तो प्राचीन भागो स्थान आधुनिक कवियों ने ग्रहण कर लिया। आज यदी कही संगीत संम्मेलन का आयोजन होता है तो अधिकांश अब एक ही कलाकार का प्रोग्राम होता है जिसे कहते है आज गुलाम अली अथवा पंकज उधास नाईट मनाई जायेगी। यदी वही भुले से ऐसा संगीत संम्मेलन का आयोजन हो गया जिसमें शास्त्रीय एंव सरल दोनो प्रकार के गायन का कार्यक्रम हो तो शास्त्रीय गायन वाले तो मंच पर बैठने के बाद ही जंहा उन्होने ताने लेना आरंभ किया, तभी श्रोता भी ताने लेने लगते है और तालीया की गडगड़ाहट के साथ ऐसे कलाकार मंच से भागते नजर आते है । उसके बाद यदी कोई गझल गाने वाला आ गया और असने कोई ऐसा प्रकार की गझल प्रस्तुत की जैसे 'रूख से पर्दा उठाया तो ऐसा लगा, चांदनी देखकर तुमको शर्मा गई'। अथवा 'जो चाहता है आग लगा दु नकाब में' तब तो वाह वाह की झडी लनग जायेगी। और जनता ऐसे गायक को सुनने के लिये एक और, एक और ऐसे पुकार करने लगेगी। संसार में प्रत्येक वस्तु व्यक्ति अपनी हार्दीक भावनाओं के अनुसार ही पसन्द आती है वह चाहे संगीत हो अथवा कोई वस्तु आज बाजार में कैसेटस् की भरमार है जिसमें अधिकांश स्त्रियों की गजले के होंगे या फिर जोडी के होंगे जैसे, जगजित सिंग, चित्रा सिंग। गजलों में यदी पुरूष की अपेक्षा कोई स्त्री कलाकार हो और उस पर नवयुवती हो तथा रूप की लावण्यता भी हो तो सोने पर सुहागा होगा। आज कुछ युवा पिढी में गझल गाने का नया प्रचलन चल रहा है।

गझल मन के भावों को विभिन्न स्वर–संगतियों के माध्यम से प्रस्तुत करने का साधन है। गायन अथवा वादन से संगीतकार जो भाव प्रस्तुत करना चाहता है, उसके अनुसार स्वरो का उपयोग करके अनपे भाव मुखरीत करता है। इसी प्रकार नृत्य में कलाकार अपने भाव प्रदर्शित करने के लिये हाव–भाव एंवम् आंगिक क्रिया का सहारा लेता है।शास्त्रीय गायन का लोकप्रिय हो जाना अभी उतना सम्भव नही है, क्योंकी शास्त्रीय गायन में, स्वरो और शब्दों के केवल दो ही साधन होते है। फिल्मी गीतों में संगीत, कला, काव्य, वाद्यो का उपयोग, गीत एंवम् चित्र का वातावरण, अनेंको व्यक्तियों का सहयोग एंवम् गीत की सरल प्रकृति आदी होती है, जो उन्हे लोकप्रिय बनाने में सहयोग देती है। फिल्मों के माध्यम से शास्त्रीय संगीत को लोकप्रिय बनाने का प्रयास, जो कुछ निर्माताओं और संगीत निर्देशको ने किया है, सराहनिय है। फलस्वरूप मालकौश, दरबारी, बागेश्री एंवम् भैरवी आदी राग गझल के माध्यम से लोकप्रिय हुये है।

आज कल फिल्म संगीत, भाव संगीत, लोकसंगीत, ठुमरी, गझल, गीत भजन, पश्चिमी तर्जो पर आधारीत गानों का प्रचार बढ रहा है। ये रागप्रधान भी हो सकते है और अन्यथा भी। इनकी लोकप्रियता और लोकमनोरंजन की क्षमता का एक प्रमुख कारण

है, कीसी परिपाटी या परंपरा से चिपके ना रहने का आग्रह। इनमें स्वर–रचना कविता के भावों के आधार पर होती है जब की ख्यालों में परिपाटी व्दारा चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ती बहुत बढ गई है। संगीत का विकास लोकरंजन पर आधारीत है और यही कारण है कि समयानुकूल गीतों की उपदेयता हर समय बनी रहती है।

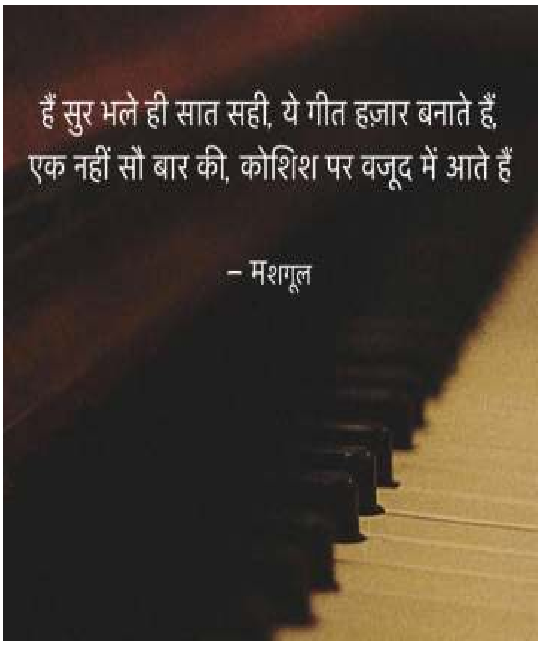

संदर्भग्रंथ

१.'मुसलमान और भारतिय संगीत', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
२.संगीत, वसंत, हाथरस
३.गझल संग्रह, रामाश्राय झा, हाथरस

शास्त्रीय संगीत, स्वर साधना

डॉ. प्रमोद रेवतकर
विभाग प्रमुख
एफ.ई.एस.गर्ल्स कॉलेज,चंद्रपूर.
मो.नं. ९७६६०९८१९०
Email – pmrewatkar@gmail.com

संगीत हे अभिव्यक्तीचे प्रभावी माध्यम आहे. संगीताचा अभ्यास करताना असे दिसून येते की, संगीताचा विकास मानवी संस्कृतीच्या विकासाबरोबर झालेला आहे. प्राचिन काळी माणसाला जेव्हा भाषा आणि लिपीचे ज्ञान नव्हते, तेव्हा तो आपल्या वेगवेगळया भावना विविध प्रकारचे आवाज काढून तसेच आपल्या देहबोलीद्वारे व्यक्त करित असे. हर्ष, शोक, उत्साह, दु:ख इत्यादी आपल्या भावना विशिष्टप्रकारच्या ध्वनिच्या माध्यमाने प्रगट केल्या जात होत्या. संगीताचा विकास हळूहळू होत गेला आणि एका कलेच्या स्वरूपात संगीताने सर्वोच्य स्थान मिळविले. जगामध्ये होत असलेल्या बदलानुसारच संगीत प्रदर्शनामध्येही अनेक बदल झाले. आज संगीत संपूर्ण भावभावनांच्या प्रगटीकरणाचे एक सशक्त माध्यम बनले आहे.

साधना म्हणजे तपश्चर्या, तपश्चर्येने ठरवलेले कार्य संपन्न होते. आपला नैसर्गिक आवाज गायानासाठी अनुकूल बनवण्याकरीता जी साधना केली जाते त्यास कंठ साधना असे म्हणतात. याकरीता साधना करण्याऱ्या साधकास आपले निश्चित साध्य काय ते माहित असणे अत्यंत जरुरीचे आहे. त्याचप्रमाणे साधना कशी करावी किती करावी, कोणत्या माध्यमाची मदत घ्यावी या सर्व बाबींची माहिती असणे आवश्यक असते. कंठसाधने बाबत अनेक मान्यवरांनी आपली मते मांडली आहेत. अनेक देशात अव्यहतपणे कंठसाधनेबाबत संशोधान व प्रयोग चालू आहे. कंठ साधनेमध्ये कोणी ओमकार साधनेचा, तर कोणी खर्ज साधनेचे महत्व सांगितले आहे. कोणी साधनेचा कालावधी, साधनेची वेळ, तोंड व शरीराच्या हालचाली याच्या माध्यमातून कंठसाधना करण्याची सुचविले आहे. परंतू माझ्या मते हे सर्व कंठसाधनेतील मार्ग आहेत. तथापी अमूक प्रकारची साधना प्रत्येकाला लागू पडेलच असे नाही. माणूस हा स्वंतत्र असून त्याच्या शरीराची जडणघडण ही इतरापेक्षा वेगळी आहे. प्रत्येकाला स्वत: च्या काही मर्यादा आहेत. त्यामुळे कंठसाधना करतांना प्रत्येकाची कंठसाधना वेगळी व त्याला स्वत:ला उपयुक्त ठरेल अशीच असावयास पाहिजे. ही साधना स्वत:च्या प्रयत्नाने व अनुभवाने निश्चित करता येते.

संगीत उपयोगी आवाज तयार करण्यास कंठसाधनेची मदत लागते. संगीत आणि आवाज साधना यांचे परस्पर सहचर्याचे नाते आहे. आवाज हा सर्वानांच असतो, पण तो संगीत उपयोगी बनवावा लागतो, त्याच्यावर सुसंस्कार करावे लागते. शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत अथवा लोक संगीत हयासाठी आवाजाची स्वंतत्र शैली आवश्यक असते. पूर्वीच्या काळी केवळ सांगीतिक गुरु जसा आवाज लावेल तसेच गाण्याची पध्दत होती. स्वत:च्या आवाजाची नैसर्गिक पात्रता लक्षात न घेता केवळ नक्कल होत असे.

निसर्गत: उत्तम आवाज असणाऱ्या व्यक्तीस कंठ साधना करताना फारसा त्रास होत नाही. तथापि त्याला त्याच्या आवाजाची गुणवत्ता वाढीसाठी प्रयत्न करावे लागतात. या प्रयत्नातून विविध गमक, मूर्की, कण, खटका इत्यादीचा अभ्यास करणे, स्वत:च्या आवाजात धुमार निर्माण करणे या गोष्टीवर भर घावा लागलो. हया उलट ज्याला बेताचा आवाज आहे, त्यांना ही साधना अधिक डोळसपणे करावी लागते. यासाठी अपार मेहनत घ्यावी लागते. कंठसाधनेशिवाय गायकीचा पाया उभा राहू शकत नाही. याकरीता गायकास आपला आवाज निर्दोष व गुणात्मक बनविण्याकरीता कंठ साधना अतिशय आवश्यक आहे.

कसलेला व कमवलेला आवाज हा कोणत्याही गान प्रकारासाठी उपयुक्त ठरतो.

कंठसाधना ही सर्वांसाठी सारखी असत नाही. प्रत्येक गायकाने स्वतःच्या आवाजातील मर्यादा व गानप्रकार लक्षात घेउन त्यानुसार स्वतःला उपयुक्त ठरेल अशा कंठसाधनेचा अवलंब करावा. ज्या ठिकाणापासून आपल्या आवाजास मर्यादा येतात तेथपासून साधनेची सुरुवात होते. सुगम संगीत, शास्त्रीय संगीत, लोक संगीत हया सर्व गायन प्रकारासाठी स्वतंत्र कंठसाधना करणे जरुरी आहे. कंठसाधनेद्वारे आवाजावर ताबा किंवा हुकूमत मिळवता येते. कंठ साधनेमध्ये पारंपारिक तसेच आवाजाची गुणवत्ता सुधारण्याच्या शास्त्रीय पध्दतीचा समावेश होतो. बोलण्यापेक्षा गाण्यासाठीच्या आवाजास जास्त गुणवत्ता असावी लागते. श्वासावर नियंत्रण, स्वर यंत्राचा मोकळपणा, आवाजातील चढउतार व कंपन, आवाजाची पट्टी, गायकाची मानसिक तयारी, तोंडाचा आकार, शब्दाचे उच्चार व गती हया सर्व बाबींचा आवाजाच्या गुणवत्तेवर परिणाम होतो. तसेच स्त्री आणि पुरुष यावर देखील आवाज घडविण्याची पध्दत वेगवेगळी असते. कंठ साधनेचे टप्पे :— आवाजाची गुणवत्ता सुधारण्यासाठी खालील काही बाबीचा विचार करणे आवश्यक आहे.

१) ऐकणे — श्रवणास भारतीय संगीतामध्ये सर्वाधिक महत्व आहे. गुरु शिष्य परंपरेत गायन शिकविताना गुरु शिष्याला वर्ष दोन वर्ष केवळ तानपुरा हाती देउन गाणे ऐकवत असत. साधनेत ऐकणे हा सर्व प्रथम टप्पा असतो. जास्तीत जास्त ऐकल्याने स्वर, कंठ, गाण्याची चाल, शब्द, आवाजाची जात, गाण्याची लय या सर्व गोष्टी मेंदुमध्ये जमा होतात व त्यांना एकप्रकारे दृष्य स्वरुप प्राप्त होते. सतत ऐकल्याने आपला मेंदू आवाजाची किंवा संगीताची छबी तयार करुन मेंदू मध्ये साठवून ठेवतो. जेव्हा आपण गाण्याचा प्रयत्न करतो तेव्हा या सर्व साठवलेल्या माहितीचे चित्र मेंदू आपणास पूरवतो. त्यानुसार आवाज उत्पन्न होण्यास मदत होते. वारंवार एकाग्रतेने ऐकल्याने आवाजातील गुणवत्ता वाढीस मदत होते. यामुळे मानसिकता व शारिरीक सहचर्य चांगले होते. जितके हे सहचर्य चांगले तितकी आवाजाची गुणवत्ता चांगली.

२) **नियंत्रित श्वसन :—** भारतीय संगीत बसून तर पाश्चात संगीत उभे राहून गाण्याची पध्दत आहे. बसून गायल्याने मनाची एकाग्रता लवकर साधली जाते व तादात्म्य हा भारतीय संगीताचा प्राण आहे. नियंत्रित श्वसनामुळे आवाजामध्ये मुलायमपणा, स्पष्टता, स्थिरता इत्यादी आवश्यक गोष्टी निर्माण होतात. भारतीय शास्त्रीय संगीत उभ्याने प्रस्तुत करणे. शक्य नसले तरी बसताना पाठीचा कणा ताठ ठेउन बसल्यास किंवा वीरासन, अर्धवीरासन, वज्रासन इ. आसनात बसून गायन केल्यास श्वसनातील अडथळा दूर होउन नियंत्रित श्वसन शक्य होते.

३) **सराव :—** तज्ञांच्या मार्गदर्शनाखाली आवाज साध ाने मधील तांत्रिकबाबींचा सराव करुन घेण्यात येतो. नियमित रियाजामुळे शरीरातील स्नायुंना व आवाज निर्मितीचा प्रक्रियेला चालना मिळते, स्वःतंतुवर नियंत्रण मिळवता येतो. रियाज एकाग्र चित्ताने मन लावून करणे अत्यंत महत्वाचे आहे. स्वतःचे परिक्षण स्वतःकेल्याने आपल्या चुका व आवाजातील त्रुटी ओळखण्यास मदत होवून आवाजात सुधारणा होण्यास मदत होते.

४) **मानसिक व शारीरिक आरोग्य :—** उत्तम शारीरिक व मानसिक स्वास्थ असेल तरच मन एकाग्र होउन गायनात तादात्म प्राप्त करता येते. नियमित व्यायाम, सकस आहार व ध्यान धारना केल्याने शारीरिक व मानसिक स्वास्थ चांगले राहते. व्हॉईस कल्चरच्या ट्रेनिंगमध्ये याही बाबीवर लक्ष दिले जाते. योग प्राणायाम व कंठ साधना दोहोंचा समन्वय साधून उत्तम संगीतोपयोगी आवाज प्राप्त होउ शकतो. आसन, बंध, मुद्रा, प्राणायम यांच्या सरावामुळे कंठ, घसा, चेहऱ्याचे स्नायू, जिभ, गाल, पडजिभ, टाहू यांचे कार्य विकसित होते. गळा, मानेच्या भागातील सर्व स्नायू, मज्जातंतू, रक्तवाहिन्या, अस्थी, पेशी यांचे आरोग्य सुधारते. शरीरातील विविध ग्रंथी अधिक सजग

होउन त्यामधून निर्माण होणारी विकारे शरीर स्वास्थ, रक्ताभिसरण, श्वसन, श्रवण क्षमता, स्मृती इत्यादी बाबींवर चांगला परिणाम होउन भावना, मन:स्वास्थ यांच्यावर नियंत्रण प्राप्त होते.

ओंमकार साधना कंठसाधनेत उच्च दर्जाची आहे. मध्य षड्जा पासून सुरुवात करुन मंद्र सप्तकातील षड्जा पर्यत ओंमकार लावल्याने आवाजामध्ये मोठी सुधारणा होते. यात दिर्घ श्वसनाबरोबरच स्वरयंत्राचे माधुर्य वाढवून आवाज जवारीदार होतो. चुकीच्या साधनेने आवाजाची हानी होण्याचा संभव असतो. स्वराचे ध्यान करताना तो स्वर पुन्हा पुन्हा म्हणून मन एकाग्र करावे. एक स्वर म्हणत असतांना इतर जवळच्या स्वरांना स्पर्श करीत मूळ स्वर गात रहावे. गळयाच्या शिरा ताणू ओरडून गावू नये, कंठ साधाना आणि गायकी हे वेगवेगळे घटक नसून, गायकी द्वारेच कंठ साधना साधना येते. स्वरसाधना सर्वांगीन असावी. आकार, इकार, ओंकार स्वच्छ निकोप, सहज, मनोवेधक लावावा. नायकी गायकीचा अभ्यास करताना अंधानुकरण नसावे. स्वत:ची आगळी वेगळी शैली निर्माण करावी. स्वर साधन हि लक्षपूर्वक, उघडया डोळयाने, खुल्या कानाने, तनमनाने करावी. आवाजाच्या निर्मितीकरीता श्वासोश्वास क्रिया, स्वरयंगातील आंदोलने, गळा व तोंड यामधील सह कंपने, अचुक उच्चार, आवाज स्थैर्य, पातळीस्टॅमीना आवाजावरील चढउतार, दबाव, आत्मविश्वास, मुलायमपणा व गोडवा ई सर्व गोष्टींचा काटेकोरपणे अभ्यास करणे आवश्यक आहे.

मंद्र सप्तक साधनेमुळे लोअर स्नायु विकसीत होतात तर तार सप्तक साधनेमुळे अप्पर स्नायू विकसीत होतात. एक आवाज मर्यादा निर्माण करतो तर दुसरा त्यास बळकटी देतो. यामुळे आवाज वार्धक्यापर्यंत टिकून राहू शकतो. दमसास प्रक्रिया सुध्दा दिर्घ होण्यास मदत होते. यामुळे फुप्फुस, स्नायू, स्वरयंत्र, मेंदु, कंठ, हदय, जठरादी अवयव सक्रिय व मजबूत होतात. चांगल्या गळयासाठी स्वास्थ उत्तम राहणे आवश्यक आहे. स्वास्थ चांगले नसेल तर गळा चांगला राहणार नाही आणि गळा चांगला नाही तर आवाज चांगला राहणार नाही. त्यासाठी चांगल्या सवयी अंगीकारुन, सकस आहार घेवून, धुम्रपान, मद्यपान, सेवमापासून दूर राहून रोज व्यायाम व रियाज करणे आवश्यक आहे.

एकंदरीत काय तर संगीताचं शिक्षण घेतांना वरील सर्व बाबी विचारात घेणे आवश्यक आहे. निकोप पध्दतीने रोज रिआज करुन, निकोप आवाज कमवू शकतो. आवाजाच्या गुणांमुळे कलाविश्कराचा दर्जा उंचावतो. आवाजामधील दोश हे जन्मजात नसून चक्क कमावलेले असतात. शिकतांना, रिआज करतांना कळत नकळत हे दोष कमवले जातात. त्यामुळे स्वत:च्या आवाजावर प्रेम करुन आपल्या आवाजाला झेपेल त्याचे जतन करुन जे काही म्हणता येईल तेच गावे. शिकणारा विद्यार्थी जेव्हा एकापेक्षा जास्त गायकांच्या गायकीचे अनुकरण करतो तेव्हा त्याच्या आवाजात आपोआप विकृतपणा येतो. दोष सुधारण्यासाठी योग्य गुरुचे मार्गदर्शन मिळणे आवश्यक आहे.

शेवटी हेच म्हणायचे की भारतीय संगीत शिक्षणात आवाज निर्मीती हयाचा स्वंतत्र शास्त्र म्हणून अभ्यास व्हावयास हवा. संगीत शिक्षणाची सुरवातच मुळात शास्त्रशुध्द आवाज निर्मातीचे तंत्र शिकण्यापासून निर्माण व्हावयास पाहिजे. वैज्ञानिक दृष्टीकोणातून निर्माण झालेली पाश्चात्य व्हाईस कल्चरचा स्विकार करुन संगीतोपयोगी आवाज निर्माण करावा व नंतर आपल्या आवडीनुसार व आवाजाला झेपेल अशा विविध शैलीतील गायन शिकल्यास, आजच्या बदलेल्या परिस्थितीत संगीत क्षेत्रात संख्यात्मक वाढीबरोबर गुणात्मक वाढ निश्चित दृष्टीस पडेल असा विश्वास वाटतो.

संदर्भ ग्रंथ :—

१) आवाज साधना शास्त्र — बी.आर. देवधर
२) संगीत विशारद — डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग
३) वॉयस कल्चर—ज्ञान एवं परंपरा—कान्ताप्रसाद मिश्रा
४) संगीत मासिक — संगीत कार्यालय, हायरस

संस्कृति साहित्य में विज्ञान

हेमचन्द चन्दोला
राजकीय शिक्षक
उत्तराखण्ड

भाषाओं के इतिहास को जब–जब हम जानने का प्रयास करते हैं तथा आदि भाषा के विषय में जो प्रश्न हमारे मन में उठता है तब संस्कृत ही एक ऐसी भाषा हमें प्राप्त होती है, जो वैज्ञानिक रीत पर पूर्ण रूप से खरी उतरती है। संस्कृत भाषा का लिपि विज्ञान, ध्वनि विज्ञान वर्ण एवं वाक्य विन्यास पूर्णरूपेण वैज्ञानिक तर्क पर आधारित है। महर्षि पाणिनी द्वारा रचित 'आष्टाध्यायी' न केवल संस्कृत की दृष्टि से बल्कि भाषाशास्त्र की दृष्टि से भी मानव मस्तिष्क की अद्वितीय कृति मानी जाती है।

वैज्ञानिक पध्दति पर आधारित संस्कृत भाषा अपने आप में एक विशालकाय साहित्यिक संपदा का भंडार संजोये हुए है। भौतिक अथवा आध्यात्मिक ज्ञान–विज्ञान की जितनी शाखाओं का वर्णन संस्कृत के साहित्य में उपलब्ध है उतना आज तक की किसी भी भाषा में नहीं मिलता। भौतिक विज्ञान, जीव विज्ञान, रसायन विज्ञान, भूविज्ञान, अन्तरिक्ष विज्ञान, मौसम विज्ञान, मनोविज्ञान, भाषा विज्ञान, कला पर्यावरण, कृषि आदि सभी विषयों के अनेक ग्रंथ संस्कृत साहित्य में उपलब्ध हैं। विशेषज्ञों एवं विश्लेषकों के लिए आज भी यह आश्चर्य का विषय बना हुआ है कि जिस काल में विज्ञानपरक अध्ययन के लिए साधनों की उपलब्धता तक न थी उस समय मनीषियों ने इतना सूक्ष्म अध्ययन किसप्रकार किया होगा? यहाँ प्रकाश की गति का एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

योजनानां सहस्त्रे द्वे द्वे शते द्वे च योजने
एकेन निमिषार्धेन क्रममाण नमोस्तु ते।।

अर्थात् सूर्य की किरण आधे निमेष (सेकेंड) में २२०२ योजन की दूरी तय करती है।

१ योजन	–	१ मील
११० यार्ड	–	९.६०२५ मील
२२०२ योजन	–	२१,१४४,७०५ मील

जिसके अनुसार प्रकाश की गति १,८५,०१६.१६९ मील प्रति सेकेंड है जबकि इसी की मॉर्डन वैल्यू १,८६,००० मील प्रति सेकेंड है जो १९ वीं सदी में सामने आयी।

इसी प्रकार आयुर्वेद में भी शारिरीक लक्षणों के आधार पर ही रोगों की पहचान की जाती थी। जहाँ आज बड़ी–बड़ी मशीनों से भी परीक्षण के बाद बीमारी पकड़ में नहीं आती वहीं आयुर्वेद शारीरिक लक्षणों के आधार पर ही बीमारी की पहचान करा देता है –

करस्याग्ङष्ठमूले या धमनी जीवसाक्षिणी।
तच्चेष्टयाँ सुखं–दुखं ज्ञेयं कायस्य पण्डितैः।।

आचार्य कणाद ने अपने वैशेषिक दर्शन में लगभग दो हजार साल पहले ही परमाणु की संकल्पना स्थापित कर दी थी। उन्होंने द्रव्य के परमाणुओं का परिचय देते हुए परमाणु को अन्तिम तत्व माना है और उसकी विस्तृत व्याख्या की है।

कम्प्यूट के लिए भी आज तक की सभी भाषाओं में संस्कृत को ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है, क्योंकि संस्कृत भाषा का एलगोरिथ्म अद्वितीय है। भारद्वाज ऋषि द्वारा रचित विमानशास्त्र पर आज अनेक शोधकार्य हो रहे हैं तथा उनके द्वारा बताए गये विमानों के प्रकार–आकार का विभिन्न स्तरों पर परीक्षण किया जा रहा है। आयुर्वेद के माध्यम से अनेक रोगों का उपचार किया जा रहा है तथा वास्तुशास्त्र की सहायता से निर्माण कार्य किये जा रहे हैं।

हमारे लिए यह गौरव की बात है कि हमारे पास एक ऐसी भाषा और उसका विपुल साहित्य है जो 'वसुधैव कुटुम्बकम' की बात करती है। आज आवश्यकता है संस्कृत भाषा के उस साहित्य को बचाने की जिसके एक–एक ग्रंथ की रचना में लेखकों ने अपना सम्पूर्ण जीवन खपा दिया। यदि आधुनिक विज्ञान में संस्कृत साहित्य के ज्ञान को मिला लिया जाय तो हमें इसके निश्चय ही कुछ विशेष परिणाम मिल सकते हैं।

संदर्भ श्रोत :

१. संस्कृत साहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय

२. संस्कृत में विज्ञान – संस्कृत भारती

३. अष्टाध्यायी – महर्षि पाणिनी

ललित कला व संगीत कला

प्रा. गिरीश चंद्रिकापुरे
असिस्टंट प्रोफेसर
आर.एस. मुंडले धरमपेठ
महाविद्यालय, नागपुर.

कला म्हणजे काय ?

'एक धागा सुखाचा, शंभर धागे दु:खाचे' असे ज्याचे सार्थ वर्णन केले जाते ते मानवी जीवन खरोखर संपूर्ण दु:खाने ओत–प्रोत आहे, व त्यात 'दु:ख पर्वताएवढे, सुख पाहता जवाएवढे' आहे. असे हे दु:खमय जीवन सुसह्य होऊ शकते ते केवळ कलेच्या वरदानामुळे. दु:खाने पोळलेल्या मानवी मनावर कला या सौंदर्यरूपी फुंकर घालतात. जीवनात आनंदाची वृद्धी करतात. जी व्यक्ती कलेच्या प्रांतात आपले आयुष्य झोकून देते, कलेद्वारे मिळणारा आनंद स्वत: घेते व इतरांनाही देते, त्या व्यक्तीच्या जीवनात तर निर्भेळ आनंदाची बरसातच होत असते. 'आनंद सुधा बरसे, झाली धुंद अमृतमय बरसात' असा अनुभव कलाकारास सतत येत असतो.

कलेची व्याख्या करू गेल्यास असे लक्षात येते की, मानवाने निसर्गाद्वारे उपलब्ध झालेल्या सामग्रीची रचना, विविक्षित तत्वांच्या आधाराने सौंदर्य निर्माण करण्याच्या दिशेने करू लागतो, तेव्हाच कलेचे अस्तित्व प्रगट होऊ लागते. उदा. नीट चालायलासुद्धा न शिकलेले बाळ जेव्हा साध्या लाकडी ठोकळ्यांना वेगवेगळ्य प्रकारे रचू लागते, त्या खेळात रमू लागते व त्यात आनंद शोधू लागते; तेव्हाच कुठेतरी त्याचा कलेच्या प्रांतात प्रवेश झालेला असतो असे आपल्याला म्हणता येते.

रंग, स्वर, शब्द (भाषा) या व यासारख्या अनेक माध्यमांपैकी एक किंवा एकाधिक माध्यमांची सौंदर्यलक्षी मांडणी म्हणजेच कला, अशी कलेची एक व्याख्या करता येऊ शकते.

उपयोजित कला व ललित कला

वात्स्यायनाच्या कामसूत्रात एकूण ६४ कलांचा उल्लेख केलेला आहे. या कलांमध्ये पाक कला, शिवणकाम–भरतकाम, वाढईकाम इ. कलांचाही समावेश आहे. या प्रकारच्या कलांचा व्यावहारिक उपयोगही असतो, त्यामुळे या कलांना उपयोजित कला असे म्हणतात. मात्र काही कला अशा असतात की, त्यांचा व्यावहारिक उपयोग शून्य असतो व केवळ आनंदवृद्धी हाच त्यांचा उद्देश असतो. अशा कलांना 'ललित कला' म्हंटले जाते. 'ललित' म्हणजे सुंदर. सौंदर्यदर्शन व त्यातून आनंद निर्माण करणे हेच ज्यांचे प्रमुख कार्य आहे, अशा कलांना ललित कला म्हणतात. अशा ललित कला एकूण पाच आहेत:

१. संगीत, २. चित्र, ३. वास्तु–शिल्प, ४. साहित्य व ५. नाट्य

या सर्व कलांपैकी नाट्यकला ही इतर सर्व कलांची जननी आहे असे म्हटले जाते. पण असेही असू शकते की, इतर ललित कलांच्या योगदानाने नाट्यकला समृद्ध झाली असावी. संस्कृत भाषेला आदिभाषेचा दर्जा दिला गेलेला आहे; मात्र ती एक परिष्कृत भाषा आहे असाही एक विचारप्रवाह आहे. भाषेचे नावच 'संस्कृत' आहे, तात्कालीन प्राकृत व प्रादेशिक बोलीभाषांवर संस्कार करून ही 'गिर्वाण वाणी' अस्तित्वात आली असावी. त्याचप्रमाणे, नाट्कला ही इतर कलांचा आधार घेऊन विकास पावली असावी असेही अनुमान काढता येते.

ललित कलांमध्ये संगीताचे स्थान विशद करतांना प्रा. डॉ. ना. भा. उपाख्य बाळासाहेब पुरोहित म्हणतात "ललित कलांमध्ये सौंदर्य, माधुर्य, सहजता, सरलता, प्रासादिकता, प्रवाह आणि ओज इ. गुण असावे लागतात. लयात्मकता हा लालित्याचा प्रमुख

गुण आहे. संगीत, काव्य, चित्र इ. कलांतही हे सर्व गुण आढळतात; आणि म्हणून या तीनही कलांना 'भगिनी कला' (Sister Arts) म्हटले आहे, पण त्यातही अधिकांश विद्वानांनी संगीताला सर्वश्रेष्ठ कला म्हटले आहे. वास्तविक कलांचे उद्दिष्ट माणसाला भौतिक सुखदु:खांपासून दूर ठेवून काहीतरी अलौकिक आनंद देणे हे आहे. त्यालाच रसानुभूतीची अवस्था म्हटले आहे. सर्वच कला मनाला शांती, आनंद, प्रेरणा प्रदान करतात. तथापि संगीतकलेमध्ये एक विशेष गुण आहे की, मानवा व्यतिरिक्त पशुपक्षी देखील संगीताने आकृष्ट होतात. अन्य ललित कलांत हे सामर्थ्य नाही. काव्य, चित्र, वास्तू, शिल्प या कलांत बुद्धीच्या सहयोगामुळेच भावभावनांचे उद्दीपन होते."

सर्व ललित कलांचा एकमेकींशी संबंध असतोच. सर्व ललित कलांमध्ये एक सर्वसामान्य तत्वाचा प्रादुर्भाव झालेला असतो, ते तत्व म्हणजे लय. संगीतात लयतत्वाला अति महत्वपूर्ण स्थान आहे, हे विदितच आहे. चित्रकलेतही रंग व रेषांच्या आकृतीने लय व तोल सांभाळला जातो. तीच गोष्ट शिल्प व वास्तू कलेची आहे. घरातील अंतर्गत सजावट करतांना उपस्करादि वस्तुंच्या ठेवणीत, भिंतींच्या रंगसंगतीत लय महत्वपूर्ण असते.

काव्यातील लय म्हणजे वृत्त, जाति व छंद. वृत्तांमध्ये अक्षरसंख्या व गण यांचे बंधन असते, जातिंमध्ये मात्रासंख्या व यतीचे बंधन असते तर छंदांमध्ये फक्त अक्षरसंख्येचेच बंधन असते. वृत्तां—मध्ये विशेष प्रसिद्ध म्हणजे शार्दुलविक्रिडित (लग्नातील मंगलाष्टके बहुधा या वृत्तात असतात), मालिनी (वदनि कवळ घेता), भुजंगप्रयात (मनाचे श्श्लोक) हे आहेत. जाति किंवा मात्रावृत्तांमध्ये अक्रूर (गुणी बाळ असा जागसि का रे वाया, नीज रे नीज शिवराया), दिंडी (बहुत दिन नच भेटलो सुंदरीला — सौभद्र मधील नाटयगीत), भुवनसुंदर (आरतीची चाल: आरती कुंजबिहारी की, जय बोलो कृष्ण मुरारी की) इ. जाति विशेष प्रसिद्ध आहेत. छंद हे तुलनेने सोपे असल्याने त्यांचे प्रचलन जास्त आहे. ओवी, अभंग, अष्टाक्षरी हे छंद विशेष प्रचलित आहेत.

राग संगीत ऐकतांना चित्रकाराला प्रेरणा मिळते. वास्तुकलेचे उत्तुंग नमुने पाहून कुमार गंधर्व आपल्या गायनात त्याचे प्रात्यक्षिक दाखवू शकतात. चित्र किंवा शिल्पाकृतीतील आरोह—अवरोह व रंगसंगती बघून संगीतकार नव्या चाली बांधू शकतात. याप्रमाणे सर्वच ललित कला एकमेकांपासून प्ररणा घेत असतात.

एका हाडाच्या कलाकाराला प्रतिभासंपन्न व तरल संवेदनक्षमतेचे मन लाभलेले असते. त्याच्या मनात जे नवे उन्मेष उठतात त्याचे रूपांतर तो आपल्या कलेत करतो. फक्त कलेच्या प्रकारानुसार त्याचे माध यम भिन्न होईल. जर चित्रकार असेल तर तो रंग व रेषांनी अभिव्यक्ति साधेल, गायक असेल तर त्याची प्रतिभा बंदिश किंवा स्वररचनेत अवतरेल, वा शिल्पी असेल तर तो त्या माध्यमातून आपली प्रेरणा अभिव्यक्त करेल. याप्रकारे मूळ प्रेरणा ही सर्व ठिकाणी सामान्य (Common) असतेच, त्यामुळे ललित कलांचे सहोदरत्व असेही स्पष्टच होते.

प्रत्येक कलेचे अभिव्यक्तीचे माध्यम निरनिराळे असते. ज्या कलेत कमीत कमी साधनांच्या सहाय्याने उत्तम अभिव्यक्ती साधली जाते ती कला श्रेष्ठ, असा कलांच्या श्रेष्ठतेसंबंधी एक निकष आहे. चित्रकलेसाठी कुंचला, कागद वा तत्सम वस्तू, रंग इ. साधने लागतात. शिल्पकलेसाठी दगड/माती, छिन्नी इ. साधने लागतात. संगीत व काव्य या कलांना मात्र अभिव्यक्ती साठी बाह्य साधनांची गरज लागत नाही. कवी वा गायकाचा आवाज पुरेसा असतो. त्यामुळे काव्य व गायन या कलांना सर्वश्रेष्ठत्वाचे पद, वरील निकषानुसार मिळू शकते.

संदर्भ:

१. 'हिंदुस्थानी संगीत पद्धती' लेखक डॉ. बाळ पुरोहित
२. 'छंदशास्त्र व संगीत' लेखक बाबूराव जोशी

"भारत में कला संस्कृति और मध्यकालीन कला के धार्मिक पहलू का अध्ययन"

डॉ. करिश्मा कांबे
(बी.एफ.ए., एम.एफ.ए. (पेंटिंग),
डी.पी.एड.,पीएच.डी. (पेंटिंग))
फाईन आर्ट डिपार्टमेंट, नागपुर.
:karishma.kambe@live.com

सारांश:—

भारत के भौगोलिक क्षेत्र में उत्पादत कला यह अत्यंत प्राचीन कला का स्वरूप है । इस कला का उभर यह संपूर्ण विश्व में पुराना होते हुये दुरस्थ प्राचीनता में इसकी उत्पत्ति है । भारतीय कला यह एक ऐसी दृश्य कला है जिसका आरंभ प्राचीन या आधुनिक, भारत में, या भारतीय कलाकारों द्वारा किया गया है । विभिन्न प्रकार के सभ्यताओं के साथ लोगों के साथ विकसित होकर यह कला सामने आई । अपने नये विचारों के साथ समाज का विकास करती गई । कलाकृतीओं में मानव आकृतिओं ने अधिक महत्व प्राप्त किया और चित्रों में निहित परिदृश्यों ने चित्रकला को नया जीवन दिया । चित्रों में निहित सतह अथवा उनकी गहराईयां यह विशेष शैली व ब्रश के फटकारों से अपनी विविधता से महत्वपूर्ण हो गई । फिर भी जीवन पर आधारित रचनाए अधिक प्रमुखता के साथ उभरी जैसे लघु चित्रकला, मुर्तिकला, वास्तुकला, वस्त्र, शिल्प कार्य, मीनाकारी कार्य, इत्यादि पीढी दर पीढी इनका महत्व बढता गया । भारत के मध्यकाल में धर्म, लोककला, भाषा इन क्षेत्रो में कला का विकास होकर, भारत के सम्रग संस्कृति के मुल्यांकन में भी महत्वपूर्ण योगदान रहा हैं ।

भक्ति आंदोलन के रहते हुय नए धर्म जैसे इस्लाम व बौध्द धर्म ने कला के प्रति योगदान दिया है । नये धर्मो के कला क्षेत्रो में मध्ययुगीन काल की सम्रग संस्कृति की विशेषताये दिखाई देती है । वास्तुकला की महत्वपूर्ण जिसे इंडोइस्लामिक शैली के नाम से जाना जाता है वो इसी कला की उत्पत्ती मानी जाती है । आश्चर्यजनक बात तो यह कि कुछ चित्रकारो ने रागो को चित्रित करने का प्रयास किया है जिससे संगीत की अमुर्त अवधारणाये रूप व रंग के कारण मृतं स्वरूप में बाहर आई है । बारामासा चित्रित होने वाले चित्रण मे भी इसी तरह के कलात्मक रूप का प्रयोग हुआ है । क्या हम कभी इन कलाकारों की रचनाओ का अनुमान लगा सकते है ।

(सूचक शब्द— कला,संस्कृति, परंपरा, धर्म, इस्लाम धर्म, हिंदू धर्म, बौध्द धर्म, भक्ति आंदोलन, मंदिर, वास्तुकला (एकल पत्थर), मुर्तियां, चित्रकला, प्रतीक व रूप)

प्रस्तावना :

मध्ययुगीन भारत :— भारत की समग्र संस्कृति के मुल्यांकन में महत्वपूर्ण कार्य यह मध्ययुगीन काल में भारत में धर्म, लोक कला व भाषा के क्षेत्र में विकास का था । भक्ति आंदोलन के साथ सिख व सुफी धर्म जैसे नए धर्म आंदोलनो ने भी इस प्रक्रिया में योगदान दिया । चारो ओर से देखने पर पता चलाता है आपको भारतीय संसकृति के कई पहलुओं पर इस्लाम का प्रभाव दिखाई देगा जब कई प्रसिध्द स्मारको का दौरा हम करते है, तो वो भारत में इस्लामिक संस्कृती व भारत की सम्रग प्रकृती के प्रतीक के रूप में खडे नजर आते है । इंडो इस्लामिक संस्कृती को दर्शाने वाले स्मारक यह इस्लाम सहित भारत के विभिन्न धर्मो को एक दुसरे से जोडते है । भारत का प्रत्येक क्षेत्र किसी न किसी लोककला व अन्य आकार को

प्रसिध्द करता है । लोक कलाओं के माध्यम से आम लोग अपनी कलात्मकता, रचनात्मकता को भारतीय संस्कृति के महत्वपूर्ण पहलु में प्रदर्शित करते है । हमारी दिलचस्प बोली भाषाओ के इतिहास के दौरान इस अवधि में प्रचलित हुई है।

पूर्व भारतीय इतिहास के गुप्त काल में कई क्षेत्रीय शक्तियों के उदय व वृध्दि के द्वारा टिप्पणी की जाती है जहां दक्षिण भारत कोई अपवाद नही था । इस काल में दक्षिण भारत में जो क्षेत्रीय शक्ति उभरी है वो क्षेत्रीय संस्कृतियों के गठन की अभिव्यक्ति थी । कुछ शक्तियां अपने वास्तविक अर्थो के साथ राज्य मे नही जा सकती लेकिन वो संबंधित क्षेत्रीय शक्तियों की शक्ती को नियंत्रित कर सकती थी, परंतु तुलानात्मक रूप से उन्हें प्रमुख शक्तियों के वर्चस्व को स्वीकार करना पडता।दक्षिण भारत में ७वीं और १३वीं शताब्दी में पल्लव चोल यह दो महत्वपूर्ण राजनैतिक शक्तियां थी ।

ऐतिहासिक छवि:— कांची के पल्लव दक्षिण भारत में राजवंशो में सबसे उल्लेखनीय व ६वी शताबदी ई. स. के मध्य दक्षिण में उभरे । ''टोडाईमंडलम'' इस क्षेत्र में सबसे पहले सत्ता स्थापित की गई । जब तामिलनाडू व दक्षिणी आंध्रप्रदेश व्यापक क्षेत्र रहकर कांची तब उनकी राजधानी थी । पल्लवों का इतिहास सिम्हाविष्णुके काल तक अस्पष्टता में डुबा हुआ है । ऐसा लगता है कि सिम्हाविष्णु के दृश्य में आने से पहले उन्होंने २०० साल तक शासन किया था । ६वीं शताब्दी के अंत सिम्हाविष्णु के अभिगमन के साथ पल्लवों ने राजनैतिक संस्कृति प्राप्त की । वे चोलो व पांडयों पर विजय प्राप्त करने का दावा करते है । ६वी शताब्दी की अवधि में दक्षिण भारत का राजनैतिक इतिहास यह कांची के पल्लव वंश व चालुक्यों पक्ष के बीच वर्चस्व के संघर्ष को दर्शाता है । संघर्ष यह कष्णा व तुंगभद्रा नदी के बीच स्थित उपजाऊ जमिन को लेकर हुआ ।

७वीं शताब्दी के महेंद्रवर्मन के प्रथम शासनकाल में पल्लवों ने निकट पडोसी राज्य को जीत लिया । परंतु चालक्य शासक पुलिकेशी द्वितीय द्वारा पराजित होकर वेंगी का राज्य उसे दिया । पल्लव के अगले शासक नरसिंह वर्मन ने पुलकेशी शासक को हराकर चालक्य की राजधानी वतापी पर कब्जा कर लिया । पुलिकेशी को मारकर नसिंहवर्मन ने वतापी कोंडन का किताब लिया । ८वीं शताब्दी मे पुन: दो वंशो में संघर्ष हुआ ।चालुक्य राजा विक्रमादित्य द्वितीय ने कांची पर कुच की । व चालुक्यों ने पल्लवो को पूरी तरह हरा दिया । बादामी के चालुक्यों का शासन दक्षिण भारत के लिए शानदार युग था । पुलिकेशी प्रथम यह प्रथम शासक थे जिसने चालुक्य वंशकी नीव रखी । स्वत: को वतापी का गुरू बनाकर राज्य की स्थापना की । चालुक्य के महान राजा पुलीकेशी द्वितीय थे । ऐहोल शिलालेख के अनुसार उन्होंने पशिचिमी गंगा, अलूपस, मालव, कदम्प व गुरारे जसे स्थानीय शक्तियों को हराया । पर्सी ब्राउन ने लिखा की सभी महान शक्तियों ने मिलकर दक्षिण भारत का इतिहास बनाया । किसी ने भी अपने वास्तु शिल्प पर अधिक प्रभावी प्रभाव नही डाला । पल्लवों ने द्रविडों के उत्पादन की नींव रखी । पल्लव शैली ने दक्षिण भारतीय वास्तु व मुर्तिकला के सौंदर्यशास्त्र को प्रभावित किया । महाबलिपुरम में ठोस चट्टानों से पत्थर के मंदिरो की खुदाई की शुरूवात कर उसकी भव्यता व प्रतिष्ठा की आधारशिला रखी । महाबलिपुरम को दक्षिण भारतीय वास्तुकला का जन्म स्थान बनाया गया। पल्लवो ने ७वींव ८वींशताब्दी में पत्थरों में मंदिरो का निर्माण किया । सबसे महत्वपूर्ण प्रसिध्द महाबलिपुरम में सात रथ मंदिर (सात शिवालय) है । नरसिंहवर्मन द्वारा निर्मित महाबलिपुरम शहर की स्थापना ''मामल्लपूरम'' के रूप में कि गई। यह शहर किनारे पर मंदिरों के लिए प्रसिध्द रहकर संरचनात्मक स्वतंत्र रूप में रखा गया था जो चट्टान से बाहर था।नरसिंहवर्मन द्वितीय द्वारा पल्लवो की सरंचनात्मक मंदिर वास्तुकला की शैली को संरक्षित व इष्ट बनाया गया था। इस

काल के ६ मंदिरथे। जहां कांची में कैलासनाथ, व वैकुंठ पेरूमल मंदिर, महाबलिपुरम में किनारे तट पर के मंदिर अधिक प्रसध्दि है ।

किनारे पर के मंदिर की वास्तुकला धर्म राजा रथ की पुष्टि कराता है। कैलासनाथ व राजसिंहवाडा मंदिर पल्लवों के मंदिरों में सबसे बडे है। शुंडाकार स्तंभ, सपाट छत वाले स्तंभो का विशाल कक्ष, बरोठा व विशाल प्राणपोशक है। वैंकुठ पेरूमल मंदिर पल्लव मंदिर परिसर का परिपक्व उदांहरण है ।

चाल राजवंश भारत में शासन करने वाले सबसे शुरूवाती राजवंशों में से एक था । संगम काल के दौरान इसने अपनी शक्ति व प्रतिशठाबनाई रखी। ९वीं शताब्दी के मध्य में इन्होंने अपनी महिमा पुन: निर्माण की व ४ शताब्दीयों तक वर्चस्व बनाया । इस राजवंश के २० शासक थे । विजयालय (८५०—८७५) राजवंश का संस्थापक था । चोल वंश के महत्वपूर्ण शासक राजराजा चोल, राजेन्द्र चोल व राजाधिराज चोल थे । इनका शासन न केवल राजनैतिक एकीकरण के लिए ही नही अपितु कला, वास्तुकला, साहित्य , व्यापार समुद्री गतिविधियों में विकास के लिए भी था । इनमें तामिलनाडु, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, कुर्ग व सीलोन के उत्तरी भाग की शामिल थे । चोल साम्राज्य राजाराज (९८५ — १०१४) व बेटे राजेन्द्र (१०१४— १०४१) के शासनकाल के दौरान अपने चरम पर पहुंच गया । राजराजा की प्रमुख उपलब्धिंया:—

१) मदुरई को जीतना व पांडियन शासक को पकडना ।
२) श्रीलंका के उत्तरी रास्ते पर आक्रमण पर इसे चोल साबित करना ।
३) मालदीप द्वीपो पर विजय ।
४) चेरा साम्राज्य की नौसेनिक शक्ती नष्ट कर, एक मजबुत नौसेना शक्ति के रूप में उभारना राजेन्द्र प्रथम की प्रमुख उपलब्धियां :—

१) गंगा राज्यो व गंगाई कोंडा चोला की उपाधि धारण करना व कई ट्रांस जीतना, इधन से उधर तक राज्य विस्तार।
२) गंगई कोंडचोलपुरम नामक नये राजधानी की स्थापना ।
३) सीलोन या श्रीलंका को जीतना ।
४) दक्षिण की कई भूमि का भारतीयकरण — पूर्वी एशिया
५) नौसैनिक अभियान ने सुमात्रा के राजओ को हराना व उसके एक राज्य को अपने राज्य में संलग्न करना ।

कुल्लतुंगा (११७८ — १२१०) अंतिम सबसे बडा चोल सम्राट था । उसके बाद चोल वंश का पतन हुआ इसका स्थान पंडया व होयसल ने ले लिया । इसके साथ दिल्ली शासक १२०६ —९० तक मामलुक तुर्क थे । उसके बाद खिलजी, ,तुगलक, सैय्यद व लोधी १५२६ तक थे इन्हें सुलतान कहा जाता था । हर सुलतान को खलीफा की ओर से एक क्षेत्र शासन करना था । जिसे मुस्लिमो का अध्यात्मिक व लौकिक प्रमुख माना जाता था। खलीफा व सुलतानो के नाम को हमामो (स्थानीय) द्वारा खुतहा, (शुक्रवार की नमाज) मे पढा जाता था । १५२६ में दिल्ली सुलतानो ने आगरा पर शासन किया ।१७०७ दिल्ली से चले गए। बाद मे १८५७ मे केवल मुगल शासन ही जारी रहा जब राजवंश समाप्त हुआ अफगान शासक शेर शाह ने मुगल शासक हुमॉयु को चुनौती देकर उसे (१५४० — ५५) १५ साल तक शासन से दुर रखा । शेरशाह के शासन मे उत्कष्ट उपलब्धियां रहकर, सडको का निर्माण जिसमें सराक ए आजम या ग्रैंड ट्रंक रोड है जो सोनारगॉव (अब बांगलादेश मे) से अटॉक (अब पाकिस्तान में) तक फैली हुई है, और दिल्ली व आगरा से १५०० कि.मी. की दुरी तक चलती है । उन्होंने सोने, चांदी, तांबे सुंदर सिक्के निर्माण करवाये जो दुसरे राजाओ द्वारा नकल किये गये ।

मुगल सम्राट अकबर (१५५६ — १६०५) शासन किया । उन्होने अपने कला विषयो में नस्लीय, धार्मिक व संस्कृति व सांस्कृतिक पूर्वाग्रहो को शामिल

किया । हिंदुओ के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध रखकर अपनी साम्राज्य वादी महत्वकांक्षओं के साथ राजपुतो के साथ विवाह के गठबंधन स्थापित किये । उनका योगदान राजनैतिक एकीकरण व प्रशासन की एक समान प्रणाली के साथ शक्तिशाली केन्द्र सरकार की स्थापना करना था । वो कला व वास्तुकला के संरक्षक थे । उन्होंने दीन — ए — इलही में विभिन्य धर्मो के विचारो को शामिल किया ।

विद्वानो द्वारा विविध धार्मिक मुद्दो पर बहस करना ।दरबार में नौ — रत्न — मुल्ला दो पायजा, हकीम हमाम, अकबर, रहीम खान ए खानन, अबुल तायल, तानसेन, राजा टोडर मल, राजा मान सिंह, फैजी व बीरबल ये उदारवाद व सहिष्णुता यह उनकी नीति व उनके उत्तराधिकारी जहॉगीर, व शहाजहां द्वारा रखी गई ।

औरंगजेब ने इसे छोड दिया । छोटी नितियां व अंतहीन मुद्दो की वजह से मुगल साम्राज्य का विघटन हुआ । दक्षिण में मराठों का उदय, नादिर शाह व अहमद शाह अब्दाली के आक्रमण, उत्त्र में सिखों का उदय इन सबवजह से मुगल साम्राज्य नष्ट हुआ ।भारत दुनिया का बडा निर्यातक रहा परंतु आधुनिकीकरण की प्रगति से वो पीछे रह गया था ।

कला व संस्कृति — इस्लाम जब भारत आया तब हिंदु धर्म प्रचलित था अंधविश्वास काफी था । हिंदु धर्म ने अपने आप को पतित कर लिया । ब्राहमण शक्तिशाली हो गये व जाती व्यवस्था स्थापित हुई । निम्न वर्ग लोग विशेषत: पीडित थे । इस्लाम हिंदुओ के विपरित था । ईश्वर की समानता, भाईचारे व एकता की बात की गई थी । इस्लाम मे हठ धर्मिता नही थी । सरल सिध्दांत व लोक तांत्रिकसंगठन था । समाज मे इसने सामाजिकता को चुनौती दी । परंतु कोई बदलाव यहां नजर नही आये । इसी दौरान परिणाम स्वरूप भक्ति व सुफी आंदोलन का उदय हुआ । दोनो आंदोलनों का तथ्य एक ही की भगवान सर्वोच्य है, सभी लोग उनके लिए समान है, और उनके लिए भक्ति व भक्ति मोक्ष प्राप्ती का मार्ग था । पुजारी समाज का महत्वपूर्ण वर्ग था । हिंदुओ के लिए 'ब्राम्हण', तो मुस्लिमों के लिए 'उलेमास'वे कर से मुक्त थे । मुक्त भुमि उनके रखरखाव के लिए व काफी शक्तिशाली भी थे । मुस्लिम सुलतानो पर उलेमाओ ने उन पर प्रभाव डालकर उनकी नितिओ को प्रभावित किया । परंतु अलाउद्दीन खिलजी के शासन मे उसे अनदेखा किया गया । पुजारी धार्मिक कार्यो में रूचि नही रखते थे लेकिन सांसारिक बातो में अधिक रूचि रखते थे ।

चोलो ने कला परंपरा का इतिहास, विकास जारी रखा । चोल वंश के प्रारंभ में निश्चित उत्साह दिखाई देता था । जो एक नये आंदोलन की शुरूवात थी । चोल वंश ने मंदिर वास्तुकला द्रविड शैली शानदार व विशिष्ट चरण को दर्शाती है । चोल शासक वास्तुकला के संरक्षक रहे। असंख्य चोल मंदिरो में मेलमालई में विजयालय चोलिसवारा, कन्ननूर में बालासुब्रमण्या त्रिकुटाटाल में सुंदरारेस्वरा, कोडुबर्त में मुवर कोविल, कुम्भकोणम में नागेश्वरास्वामी पुल्लामंगई में ब्रम्हापुरीश्वर, श्रीनिवासनैयुर में कुरंगानाथ, किलिनियुर में अगस्तीश्वरा और चोलिसवारा मंदिर, तिरूवल्लिवरम में शिव मंदिर।

पुराने चित्र पुदुकोट्टई राज्य के विजयालय चोलिसवारा मंदिरो की दीवारों व तंजौर में बृहदिश्वर मंदिरो में पाये गये । महाकाल, देवी व शिव, नटराज पर चित्र अभी भी विजयालय चोलिसवारा मंदिर की दिवारों पर दिखाई देते है । तंजौर में बृहदिश्वर मंदिर के विषय शिवा व नटराज व त्रिपुरांतक के रूप में कैलाश के शिव प्रतिनिधित्व करते हुये दृश्यो को बलशाली रचनाओ के साथ दिवारो पर रखा गया । मध्ययुगीन काल की संपूर्ण संस्कृति की विशेषता इन क्षेत्रो में दिखाई देती है । इंडोइस्लामिक शैली का निर्माण इन्ही से हुआ है ।जहां १) गुंबद, २) बुलंद ३) मीनार या मीनारे ४) मेहराब (आर्क) विशेषता मानी जाती है ।

मुगल प्रकृति के महान प्रेमी रहकर सुंदर किले उद्यानो के निर्माण में अपना समय दिया करते थे । शालीमार व निशात बाग हमारे सांस्कृति विरासत के महत्वपूर्ण तत्व है । चरण व स्तरो के साथ उद्यान, फव्वारे जिसमें पानी झिलमिलाता है पूरे वातावरण को एक विशेष आकर्षण देता है । लाहौर (अब पाकिस्तान मे) उद्यान का सबसे सुंदर उदाहरण है । भारत मे चंडीगढ में कालका रोड पर स्थित पिंजौर गार्डन में देखा जा सकता है । जहां सात स्तरों का गार्डन है जिसने अंग्रेजो को प्रभावित किया है और उन्होंने तीन स्तरो का गार्डन बाईस रीगल लॉज (राष्ट्रपती भवन) दिल्ली में बनाया । २०वीं शताब्दी में वृदांवन गार्डन जो मैसुर में है । उसे बनाया गया । पिएट्रा डयूर या रंगीन पत्थर संगमरमर पर जडना शहाजहां के दिनो में किया जाता था । दिल्ली के लाल किले मे व आगरा के ताजमहल मे ऐसा काम दिखाई देता है । फतेहपुर सीकरी परिसर, आगरा, लाहौर का किला, दिल्ली व लाहौर मे शाही मस्जिदे हमारी विरासत का हिस्सा है । इसी काल में मस्जिदो, राजाओ व दरगाहो की कब्रे परिदृश्य में नजर आने लगी ।

शिल्पकला व चित्रकला :– चोल वंश अपने शिल्पकला के लिए भी जाने जाते है । कई प्रकार के भव्य व सुंदर शिल्पकृती चोल वंश मे निर्माण हुई है। तीन भागो में शिल्पकृती को बाटा गया । चित्र, अलंकृत शिल्प व आदर्श शिल्पकृती । तीन शिल्पकृती संरक्षित व जीवन से जुडी है –संपूर्ण चित्र में दो महिलांए व एक पुरूष श्रीनिवासबल्लुर के कुरंगानाथ मंदिर की दीवारों पर और कई अन्य कुंभकर्णम के नागेश्वर मंदिर में । तिरूवल्लिस्वरंभ में तो शिव मंदिर एक शानदार प्रारंभिक चोल आईकनोग्राफी का संग्रहालय है । व अन्य महत्वपूर्ण मुर्तियों में तो आठ सशस्त्र दुर्गा व विष्णु समुह व बातचीत करती दो रानीयां ''ऐसा खंडहर अवस्था में पाया गया यह आलागपुरम में शिल्प दिखाई देता है । तंजौर का बृहदीश्वर मंदिर व गंगई कोंडा के चोलापुरम में कई बडे आकार व बलशाली निष्पादन के प्रतीक दिखाई देते है । चोल वंश के शिल्प यह कांस्य कास्टिंग व १०वीं शताब्दी के मध्य में कांस्य चित्र रूप में भी दिखाईगये । इसमे अपने विभिन्न रूपों साथ शिव की छवि पहले स्थान पर है ।

नागेश्वर मंदिर में जो शिव की छवि ज्ञात हुई है वो सबसे बडी व बेहतरीन छवि मे से एक है । कई कला समीक्षको व महान मुर्तिकार 'रोडिन' ने दिव्य नर्तक की परिकल्पना व उसका लौकिक महत्व, और चोल मुर्तिकार की प्रस्तुति की उत्कष्टता को लेकर काफी प्रशंसा की है । तंजौर जिले में तिरूक्कडयुर यहां कांस्य का एक मुर्ति समुहजिसमें राजा राम, लक्ष्मण, सीता व पुजा करते हुये हनुमान यह शिल्प चोल कांस्य कास्टिंग का बेहतरीन उत्पादों मे से एक दिखाई गया है । सजावटी मुर्तिकला में कई प्रकार पाये गये जैसे – वास्तुशिल्प रूपांकन, पुष्प व वनस्पति प्रकार, जानवरों के प्रकार, पक्षी, नृत्यशिल्प व काल्पनिक व पौरांणिक कहानियां ।

इस्लामिक संस्कृति से जो एक क्षेत्र प्रभावित था वो चित्रकला का क्षेत्र था । हिंमायु राजा ने २० साल पर्सिया में शरणार्थी बनकर समय व्यतीत किया। ई. स. १५५५ में पुन: दिल्ली का शासक बनकर उन्होंने चित्रकारों को अपनेसाथ लेकर आये उनमे से मीर सईद अली व अबुद समद थे । जिन्होंने पांडुलिपी की परंपरा को पोषित किया । उसका एक उदा. दास्तान – ए – अमीर हमजा है, जिसमें लगभग १२०० चित्रकलाएं है । इस अवधि में कलाकरो ने रागो पर भी चित्रों को चित्रित करने का प्रयास किया है जो अपने आप में ही आश्चर्यजनक है । संगीत जैसे अमुर्त धारणाओं को रंग व रूप दिया है। बारामासा चित्रकला को इसी तरह कलात्मक रूप मिला है । क्या आप इन कलाकारों के रचनात्मक स्वरूप, सोच का अनुमान लगा सकते है ? चीन के कलाकरों ने भी संगीत व ऋतुओं को चित्रित करने की कोशिश की है।

मुगल शासको ने इन चित्रकारों को संरक्षण देकर मुगल स्कुल ऑफ पेंटिंग का विकास किया । राजा अकबर ने चित्रकारो को नियुक्त किया । और उसीका नतीजा यह हुआ कि चित्रकला में पर्शियन व भारतीय शैली का संलगीकरण दिखाई दिया । युरोपीय प्रभाव भी भारतीय कला पर दिखाई दिया ।

मुगल स्कुल ऑफ पेंटिंग यह जहाँगीर जैसे प्रसिध्द चित्रकार के हाथो आगे विकसित हुआ । उस्ताद व अबुल हसन,जैसे चित्रकारों से दरबार भरा था । मंसुर अपने लघुचित्रकला के लिए माने जाते थे। रूढिवादी विचार व राजनैतिक पुर्वाग्रहो के कारण औरंगजेब ने संगीत व चित्रकला को संरक्षण देना बंद कर दिया । कुछ राजकुमारो ने चित्रकला को संरक्षण दिया जिस वजह से मुगल स्कुल के साथ राजपुत व पहाडी स्कुल को भी प्रोत्साहन मिला । कई उच्च वर्ग केलोगो ने चित्रकारों को संरक्षण दिया ।इसी वजह मंदिर व हवेलियां आज भी शुशोभित दिखाई देकर पर्यटको को आकर्षित करती है । राजस्थान में इन हवेलियों का दर्शन होता है ।१६ से १८ शताब्दी तक मुगल स्कुल ऑफ आर्ट ने इंडोपर्शियन स्कुल ऑफ मिनिएचर आर्ट को जन्म दिया । मुगल दरबारी चित्रकारो ने मानवाकृती, वेशभुषा के अतिरिक्त परिदृश्यों का भी निर्माण किया । भारतीय शैली के संपर्क मे आते ही लघुचित्रो पर गायन भी शुरू हुआ मासिक वेतन से कार्यरत होकर उन्होंने चेंजजनामा, जफरनामा व रामायण पर भी चित्रकारी करना आरंभ किया था ।

निष्कर्ष :– यहां मध्ययुगीन काल की प्रेरकता, कला, परंपरा, रीती, संस्कृति, धर्म व ऐतिहासिक युग और महान राजाओ के प्रति विश्वास जताया है । दक्षिण भारत के मध्ययुगीन शासक जिन्हें पल्लव, चालुक्य व चोल राजवंश कहा जाता है, उन्होंने ६वीं शताब्दी से १३वीं शताब्दी तक शासन किया है । तुर्की शासक (१२०६ – १५२६) जिन्होंने खलिफाओं की ओर से शासन किया । मुगलो ने दिल्ली के सुल्तानों का स्थान लिया । संगीत, चित्रकला, वास्तुकला, मुर्तिकला का संरक्षण कर १७०७ तक भारत पर शासन किया । १७०७ के बाद मुगल साम्राज्य कमजोर होकर विघटित हुआ और ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी का उदय हुआ। साथ ही पल्लवो, चालुक्यों, चोलवंश ने मंदिरो में एक विशाल पत्थर से वास्तुकलाओ का निर्माण किया। १४ वीं व १६वीं शताब्दी में भक्ति आंदोलन दो धाराओ में विकसित हुई, निगुण व सगुण । ऊर्दु के साथ कई भाषाओ का विस्तार हुआ जैसे असमिया, बंगाली, हिन्दी, गुजराती, पंजाबी, मराठी, तमिल, तेलुगु, कन्नड, मलयालम ई. चोलवंश ने बंगाल व इंडोनेशिया पर विजय प्राप्त कर लोकतांत्रिक संस्थाओं की शुरूवात की ।कुल मिलाकर मध्ययुगीन भारत ने कला, परंपरा, रीतिरिवाज, संस्कृति और धर्म के साथ एक विशाल श्रृखंला की स्थापना व उत्कर्ष किया।

ग्रंथसूची :–

1) Indian culture and Heritage, NIOS Press, Delhi.

2) J.C. Harle, The Art and Architecture of the Indian subcontinent. 2nd edn. Yale university press pelican history of Art 1994.

3) Jyotindra. Jaint (ed) Kalighat Painting. Images from a changing world, Mapin Publication Pvt. Ltd. Ahmadabad 1999.

4) N.Padmanbhan, Medieval India: Society, Culture and Religion, University of Calicut Press Kerala 2014.

5) Partha Mitter, Indian Art, Oxford University, Press , Oxford 2001.

6) Rhoads Murphey, 2006 , A History of Asia, Pearson Education Press, inc, New York, 2006.

7) V. Dehejia Harsha, The Advita of Art, Motilal Banarsidass Press, Delhi.

रचनाओं का सांगीतिक विवेचना (संदर्भ–नंददास)

डॉ. सुनील कुमार तिवारी
विभागाध्यक्ष
स्नातकोत्तर संगीत विभाग
सुन्दरवती महिला महाविद्यालय
भागलपुर, तिलका माँझी भागलपुर
विश्वविद्यालय, भागलपुर.
संपर्क सुत्र– ९४३१८७१४८०

सुर – सुर का अर्थ स्वर होता है। किसी भी बंदिश की सुर उसके स्वरों पर निर्भर करती है। उसका स्वरूप उनके स्वरों पर निर्भर करती है। स्वर से राग बनती है। सुर का प्रारम्भिक रूप स्वर है। इसलिए स्वर को परिभाषित करना अनिवार्य होगा – साधरण बोल – चाल की भाषा में संगीतोपयोगी आवाज को स्वर कहते है। अर्थात जो संगीतोपयोगी आवाज अपने आप में मधुर लगती है। उसे 'स्वर' कहते है।

स्वयं यो राजते नादः स स्वरः परिकिर्तितः। (१)

अर्थात् जो नाद स्वयं शोभित है एंव मधुर हो उसे स्वर कहते है।

स्वर की परिभाषा ''संगीत रत्नाकर'' नामक संगीत ग्रंथ में पृष्ठ ४० पर इस प्रकार दी गई है।

श्रुत्यनन्तरभावी यः स्निग्धो नुरणनात्मकः।
स्वतोरञ्जयति श्रोतृचितं स स्वर ऊच्यते।।

अर्थात् श्रुति के ही बाद में लगातार होने वाली सुरीला और मधुर ध्वनि जो तेल की धार के भाँति अटूट एंव गूँजदार हो और जो स्वतः ही अर्थात् अपने आप बिना किसी अन्य वस्तु की सहायता के सुनने वालो का मधुर लगे उसे स्वर कहते हैं।

स्वर की परिभाषा समझने के लिए हमे तीन बातों का ध्यान रखना जरूरी है।

(१) आवाज संगीतोपयोगी हो।
(२) आवाज स्थिर और गूँजदार हो।
(३) आवाज स्वतः मधुर हो।

स्वर की परिभाषा :–

जो संगीतोपयोगी आवाज स्थिर और गूँजदार होती है और जो सुननेवालों को अपने आप मधुर लगती है उसे स्वर कहते है।

''संगीत बोध'' में डा. शरचन्द्र श्रीधर परांजपे जी ने स्वर की विवेचना इस प्रकार की है : – स्वर श्रुतियों से बनते हैं। श्रुति सूक्ष्मतर ध्वनि है, जिन्हें पाश्चात्य संगीत में माइक्रोटोन कहते है। प्रत्येक स्वर को बनने में सूक्ष्मतर ध्वनियों का बड़ा महत्व है। स्वरों की गूंज या अनुरणन के लिए श्रुतियों का होना आवश्यक है। श्रुति स्वयं रंजक नहीं होती, परन्तु स्वर को रंजक बनाने में सहायता करती है। श्रुति तरल है और स्वर स्थिर होते है। कुछ रागों में आरोह करते समय कुछ स्वर आगे वास्तविक स्थान से कुछ चढ़ें हुए रहते हैं और अवरोह में उतरते हुए सुनाई पड़ते है। इसका तात्पर्य उन स्वरों के श्रुतियों की तरलता से है। गमक एंव स्वर संगती जैसी क्रियाओं में यह तरलता, स्पष्ट हो जाती है। गायन की अपेक्षा वाद्यों में इस तरलता का स्पष्ट साक्षात्कार होता है। भीमपलासी, अड़ाना इत्यादि रागों में आरोह के समय कोमल नी की गति तार पड़ज की ओर होती है और अवरोह में वहीं उतरा हुआ सुनाई देता हैं। ये ही श्रुतियाँ जब किसी एक स्थान पर स्थिर हो जाती है तो वह 'स्वर' बन जाती है। श्रुति स्वतंत्र रूप में रंजक हो यह आवश्यक नहीं इसीलिए अनेक श्रुतियाँ वर्ज्य या निरर्थक मानी जाती है।

ऐसी कोई ध्वनि जो सुनी न जा सकती हो,

श्रुति नहीं कहला सकती, उसका 'स्वर' होना तो दूर की बात है। स्वर के लिए श्रुति सम्पन्नता और अनुरणन दोनों आवश्यक है। श्रुति केवल सुनी जा सकती है परन्तु उसमें अनुरणन का अभाव हो ता श्रुति नहीं होती। श्रुति में अनुरणन होने पर वह स्वर बन जाती है। श्रुतियाँ असंख्य है परन्तु संगीत की आवश्यकता के अनुसार एक सप्तक में केवल २२ श्रुतियाँ ही मानी जाती हैं। इन श्रुतियों के नाम स्वतंत्र रूप से नहीं दिये जा सकते हैं। श्रुति स्वर से अलग होकर सुनी नहीं जा सकती। उसका स्वर के साथ अभिन्न सम्बन्ध रहता है और वह किसी स्वर के साथ या संदर्भ में ही सुनी जा सकती है। उदाहरणार्थ, सा अर्थात् षड्ज की चार श्रुतियाँ परम्परा से मानी गई हैं। षड्ज सुस्वर लग जाने पर कहा जाता कि वह चतु:श्रुति है परन्तु उसकी चारों श्रुतियों को अलग — अलग दिखाने की बात यदि की जाय तो सर्वथा असम्भव है। आचार्य भरत तथा शारंगदेव ने जो श्रुतिदर्शन या सारण की व्यवस्था बताई है, वह केवल यह दिखाने के लिए कि श्रुति स्वर का सुक्ष्मतम उपादान है और ऐसी ध्वनियाँ एक सप्तक में केवल २२ ही हो सकती है। श्रुति की सार्थकता स्वर में ही हैं।

एक सप्तक में शुद्ध और विकृत मिलाकर कुल १२ स्वर माने जाते हैं जिसमें ७ शुद्ध ४ कोमल और एक तीव्र स्वर। सातों शुद्ध स्वरों को कुछ — कुछ दूरियों में बाँटा गया है। भरत के ''चतुश्चतुश्चतुश्चैव'' सिद्धान्त के अनुसार २२ श्रुतियों में सातों स्वरों को बाँटा गया हैं। सा—म—प = ४+४+४ = १२

रे—ध = ३+३ = ०६

ग—नी = २+२ = ०४ = २२ श्रुतियाँ

सातों स्वरों का नाम क्रमश: षड्ज, ऋषभ, गंधार, मध यम, पंचम, धैवत, और निषाद जिसको सा, रे, ग, म, प, ध, नि,। सां चौथी श्रुति पर, रे सातवीं श्रुति पर, ग नवीं श्रुति पर, म तेरहवीं श्रुति पर, प सतरहवी श्रुति पर, ध बींसवीं श्रुति पर, और नि बाइसवीं श्रुति पर। किसी भी पद या रचना को संगीतमय बनाने के लिए इन्हीं स्वरों की आवश्यकता होती है जिसे सुर कहते है और हम यह कह बैठते है कि इस पद का सुर बहुत अच्छा है।

लय :— समय के किसी भी भाग की समान चाल को लय कहते हैं। जैसे यदि हम ऐक से पाँच तक लय में गिनें तो समान चाल से कहेंगें एक, दो, तीन, चार, पाँच, ऐसा कहते समय हम बीच में न कहीं पर रूकेंगे और न कहीं पर चाल को धीमा या तेज करेंगे बल्कि एक समान चाल से लगातार एक से पाँच तक कह जाएँगे। जिस प्रकार एक घड़ी में सेकेण्ड की आवाज एक समान चाल से टक टक टक टक हुआ करती है और बीच में न कहीं पर धीमी और न कहीं पर तेज होती है उसी प्रकार गाने — बजाने में भी होता है। इसी समान चाल को लय कहते हैं।

लय मुख्यत: तीन प्रकार की होती है :

(१) विलम्बित — लय

(२) मध्यलय और

(३) द्रुत —लय

(१) विलम्बित — लय : — जिस लय की चाल बहुत धीमी होती है उसे विलम्बित लय कहते हैं। उसको 'ठाह — लय' या ठाह भी कहते हैं।

(२) मध्यलय : — जिस लय की चाल 'विलम्बित — लय' और द्रुत — लय के बीच की चाल होती है उसे 'मध्यलय' कहते हैं। 'विलम्बित लय' से दुगुनी तेज और द्रुत — लय से दुगुनी धीमी लय को मध्यलय कहते हैं। संक्षेप में विलम्बित — लय से दुगनी तेज लय को मध्यलय और मध्य — लय से दुगुनी तेज लय को द्रुत — लय कहते हैं।

(३) द्रुत —लय — जिस लय की चाल तेज अर्थात् विलम्बित — लय से चौगुनी तेज होती है उसे द्रुत — लय कहते है।

ताल — भारतीय संगीत में ताल — परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। भारतीय तालों का स्रोत वहीं है, जो विदेशी तालों का है। ताल लय को दर्शाने

की क्रिया है। संगीत में विभिन्न स्वरों के बीच जो अन्तराल होता है। उसको नापने के लिए ताल की क्रिया आरंभ होती है। लय एक नैसर्गिक प्रक्रिया है जिसका विस्तार समस्त प्रकृति में सर्वत्र पाया जाता है। स्वयं मानव का जीवन, श्वास – प्रश्वास की क्रिया पर निर्भर करता है, उसमें लय स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उसकी लय जरा सी बिगड़ जाने पर मनुष्य का जीवन खतरे में पड़ जाता है। हृदय की गति और नाड़ी का चलन इस लय – तत्व का उत्कृष्ट उदाहरण है। जिस नियमित गति से हृदय का स्पदन होता रहता है या नाड़ी के ठोके पड़ते रहते हैं, वही नियमित गति लय का मुख्य लक्षण है।

लय के जन्म के साथ ही आवश्यकता पड़ी और ताल का जन्म हुआ। लय को काल तथा क्रिया से नियंत्रित करने पर ताल का उद्‌भव होता है। लय स्वयं एक व्यापक एंव अखण्डित क्रिया है। इसको वांछित अन्तराल में बाँधकर क्रिया से दर्शाना ही 'ताल' कहलाता है। ताली शब्द जो ताल से निकला है, लय को दर्शाने की क्रिया का सूचक है, यह क्रिया सशब्द और नि:शब्द रहती थी। सशब्द क्रिया में ताली जैसी हाथ पर आघात करने की क्रिया थी और नि:शब्द में हाथ खाली फेंकेने जैसे क्रिया थी।

सामवेद के संगीत में हाथ की उँगलियों पर स्वरों को अन्तराल दर्शाये जाते थे। इसी का विकास आगे चलकर हाथ की विभिन्न क्रियाओं में हुआ। रामायण तथा महाभारत में ऐसे लोगों का उल्लेख मिलता है जो ताल दर्शाने तथा मात्रा गिनने के लिए नियुक्त होते थे। इन क्रियाओं के कारण गीत तथा गत की प्रत्येक मात्रा की गणना हो सकती थी और इसके माध्यम से गीतों की बन्दिश भी सुरक्षित रह सकती थी। भरत के नाट्यशास्त्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि ताल की प्रत्येक मात्रा के लिए सशब्द या नि:शब्द में से कोई क्रिया अवश्य की जाती थी। ध्रुवा, शम्या, ताल और सन्निपात सशब्द क्रियाएँ थी। ध्रुवा में चुटकी बजायी जाती थी। शम्या में दाहिने हाथ से बायें हाथ पर आघात, ताल में बायें से दाहिने पर आघात और सन्निपात में दोनों हाथ से ताली बजाई जाती थी। नि:शब्द में आवाप, निष्काम, विपेक्ष और प्रवेश की क्रियाएँ थीं। आवाप में अँगुलियों को बन्द किया जाता था। निष्काम में अँगुलियाँ खोली जाती थीं, विक्षेप में अँगुलियाँ को दाहिनी ओर फेंका जाता था और प्रवेश में हाथ को नीचे की और ले जाया जाता था, तत्कालीन ध्रुवा – गीत जहाँ दीर्घ और अनेक मात्राओं से युक्त होता था, वहाँ इन क्रियाओं का संकेत अवश्य किया जाता था संगीत रत्नाकर के समय तक इसके अतिरिक्त सर्पिणी कृष्य, पद्‌मनी, विसर्जित जैसी सात हस्त–क्रियाएँ प्रचार में आई, जिनका उपयोग देशी तालों में किया जाता था। यह परम्परा उत्तर तथा दक्षिण दोनों में किसी न किसी रूप में आज भी सुरक्षित है। ध्रुपद, धमार तथा तराना गाते समय गायकों द्वारा आज भी मात्राओं की गणना अँगुलियों पर की जाती है, यह तथ्य सर्वविदित है। दक्षिण में ताल की प्रत्येक मात्रा को हाथ पर दिखाने की परम्परा आज भी सुरक्षित है।

मात्रा तथा कला : – संगीत शास्त्र में आरम्भ से मात्रिक छन्दों का प्रचलन रहा। मात्रिक छन्द वह है जिसमें गीत की बंदिश मात्राओं पर निर्भर रहती है न कि अक्षरों पर। काव्य की रचना वर्ण या अक्षरों के अनुसार चलती रही परन्तु गीत की रचना तथा गायन के लिए मात्रिक छन्द अधिक योग्य माने गये। मात्रा, समय को नापने का न्यूनतम परिणाम या पैमाना है। मात्राओं के योग को कला कहा जाता है। प्राचीन शास्त्रकारों ने मात्रा की कला विधि निर्धारित करने का भी प्रयत्न किया वेद के शिक्षा ग्रंथों में इसका परिमाण पक्षियों की ध्वनि के अनुसार दिया गया है।

उदाहणार्थ, चाष नामक पक्षी एक ध्वनि जिस समयावधि में करता है, उसकों १ मात्रा का समय माना गया। काक नामक पक्षी की ध्वनि दो मात्राओं के बराबर मानी गयी, मयूर की तीन मात्रा और नेवले की अर्ध मात्रा के बराबर मानी गयी।

संस्कृत के व्याकरणकारों ने ह्स्व, दीर्घ और प्लुत स्वरों के उच्चारण को क्रमशः एक, दो और तीन मात्राओं को माना है।

मात्रा की कालावधि : –

आज कल इन विधियों के माध्यम से प्राचीन मात्रा का समय निर्धारित करना सम्भव नहीं। मात्रा की कालावधि को निश्चित रूप से बताने के लिए शास्त्रकारों ने कालांगों का निरूपण क्षण, लव, काष्ठा, निमेष आदि सूक्ष्म काल भेदों में किया। प्राचीन काल में दो मिनट में जो शब्द या स्वर उच्चारण किया जाता था उसे एक मात्रा माना जाता था। प्राचीन काल में मात्रा का यह परिणाम लय की गति निर्धारित करने के लिए उपयोगी था। वर्तमान में मात्रा का कोई परिणाम निश्चित नहीं है। वह सर्वथा कलाकार के इच्छा पर निर्भर होता है। इसी कारण एक गायक ख्याल अत्यन्त धीमी गति से गाता है, तो दूसरा अपेक्षाकृत कम धीमा पसन्द करता है। गायक अथवा **नर्तक अपनी –** अपनी इच्छानुसार विलम्बित, मध्य और द्रुत लय का कालमान स्थिर करते हैं। कुछ गायक, जिनका स्वर और स्वास पर अधिकार है, विलंबित के अतिविलंबित बनाकर गाते हैं। दक्षिणी संगीत में ताल की गति उतनी विलंबित नहीं होती जितनी उत्तरी भारतीय संगीत में हैं। इस भिन्नता का कारण यह है कि मात्रा का प्रमाण न तो स्थिर है, न एक सा ही है। नये रागों का निर्माण जिस प्रकार कलाकार की प्रतिभा पर निर्भर रहता है उसी प्रकार नये तालों का निर्माण भी कलाकार की प्रतिभा तथा कुशलता के परिणामस्वरूप होता है। ताल के अर्न्तगत द्रुत, लघु, गुरू और प्लुत अक्षरों के उलट – पुलट से असंख्य तालों का निर्माण होता है। जिसके कारण किसी भी रचना को स्वरबद्ध करना आसान होता है।

रागः– वह विशेष प्रकार की ध्वनि जो स्वरों के विशेष क्रम से उत्पन्न हुई हो और एक भावानात्मक वातावरण का निर्माण करके मन को प्रसन्न करती है राग कहलाती है।

स्वर रचना अथवा धुन का वह समूह जो संवादी सिद्धान्त का पालन करते हुए अपना विशिष्ट प्रभाव यानी, रंजकता, श्रोता के उपर डाले उसे राग कहते है। वह स्वर समूह जिसमें अन्य बातें होते हुए भी रंजकता नहीं हो तो वह राग नहीं हो सकती। प्राचीन काल में इन्हीं रागों को जातियों के नाम से जाना जाता था यानि जातियाँ रागों की पर्यायवाची थी। जो जाति के लक्षण थे वे राग के भी थे। जातियाँ ऐसी धुने थीं, जिनका उद्गम लोक – संगीत में था। आवश्यक संस्कार तथा परिष्कार के कारण इनको शास्त्रीय संगीत में स्थान प्राप्त था। वैदिक युग में प्रचलित तथा लोकप्रिय धुने इसकी आधार थी। जातियों के इसी प्राचीनता के आधार पर ही उनकी गणना 'मार्ग' संगीत में की गई है। रामायण – काल में सात शुद्ध जातियाँ प्रचार में थी और उनको क्लासिकल या उच्च श्रेणीय संगीत में बराबर स्थान प्राप्त था।

भरत के नाट्यशास्त्र में जातियाँ १८ थी जिनमें ७ शुद्ध और ११ विकृत थी। इन जातियों के अतिरिक्त ७ ग्राम रागों का भी प्रचार था, जैसे – मध यम ग्राम, षड़ज साधारित, पंचम, कैशिक, षाडव तथा कैशिक मध्यम। जाति उच्च संगीत की वस्तु थी, राग लोक संगीत की चीज थी। दोनों का उद्देश्य, गठन तथा गायन शैली, सैद्धान्तिक दृष्टि से समान होने के कारण लोक संगीत के रागों ने जातियों का स्थान ग्रहण कर लिया।

राग भारतीय संगीत का प्रधान वैशिष्ट्य है और इसका आधार मेलाडी है जबकि पाश्चात्य संगीत का आधार हारमनी है। मेलाडी के गायन – वादन के अन्तर्गत किसी विशिष्ट स्वरावली को लेकर स्वरों का ऐसा क्रमिक विकास किया जाता है कि सभी स्वर स्थायी स्वर सा से अपना नाता जोड़ लेते हैं। विभिन्न स्वरों का महत्व इसी में रहता है कि वे स्थायी स्वर के साथ संवादी सम्बन्ध स्थापित कर लें।

संगीत का लक्ष्य हमेंशा से रस परिपाक रहा है। इसीलिए हम देखते है कि प्राचीन संगीताचार्यो से

लेकर शारंगदेव तक सभी विद्वानों का उद्देश्य संगीत के द्वारा रस परिपाक ही है, वे बड़ी खोज के बाद यह निर्णय कर पाये थे कि किस रस की अभिव्यंजना के लिए किस स्वर का प्रयोग आधार स्वर के रूप में करना चाहिए। इसी कारण से भरत से लेकर शारंगदेव तक सभी आचार्यों ने अपनी जातियों और रागों में उससे संबंध रस की चर्चा की है और अंश स्वर की प्रधानतया रस का अभिव्यंजक बताया है।

भरतमुनि ने अंशस्वर के दस लक्ष्ण बताए हैं जिसमें राग का आवास हो। अर्थात् जिसमें राग रहता हो, (२) जो रस की अभिव्यक्ति का मुख्य उपकरण हों, (३ –४) जिसकी मंद और तार सप्तक में पाँच – पाँच स्वरों तक गति हो, (५) जो अन्य स्वर समूहों से परिवेष्टित हो (६) जिसके संवादी और अनुवादी स्वर भी बली हों, (७,८,९,१०) जो ग्रह, अपन्यास, सन्यास और विन्यास के प्रयोग के समय उपस्थित रहता हो। अन्ततः राग शब्द की उत्पत्ति ''रंज्'' से हुई है जिसका अर्थ होता है प्रसन्न करना। इसके अन्तर्गत तीन बातों का होना आवश्यक है।

(१) ध्वनि या आवाज की विशिष्ट रचना का होना।

(२) 'स्वर' और 'वर्ण' का होना और

(३) रंजकता का होना।

लोक रूचि में परिवर्तन होते गया तो यह आवश्यकता होने लगी कि किस ध्वनि अथवा राग को किस भाव के लिए माना जाय। यदि इसके लिए कोई वर्गीकरण कर दिया जाय तो अधिक उत्तम रहेगा। इस कारण जाति वर्गीकरण ग्राम राग, वर्गीकरण, पुल्लिंग राग, स्त्री राग, नंपुसक राग; भाषा राग, विभाषा राग, उपांग राग, अंतर्भाषा राग, रागांग, क्रियांग, शुद्ध, छायालग और संकीर्ण राग, राग – रागिनी पद्धति, मेल पद्धति, रांगाग राग वर्णीकरण जैसे अनेक वर्गीकरण हुए।

राग – रागिनी – वर्गीकरण : – शाके संवत् १३६२ अर्थात् सन् १४४० ई० में लिखा गया एक ग्रंथ 'नारद' नामक व्यक्ति का 'पंचमसार संहिता' है। (इसकी पांडुलिपि बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के पास है।) इसमें सर्वप्रथम राग – रागिनियों के ध्यानों के श्लोक दिए हैं तथा 'मालव, मल्लार', श्री, वसंत, हिंडोल आदि रागों को पुरूष जैसे वस्त्रों में बताया है। शेष को रागिनी शब्द से सम्बोधित किया है। इससे ऐसा प्रतित होता है कि राग–रागिनी वर्गीकरण का आरम्भ पंद्रहवी शताब्दी में हुआ परंतु पाँचवी शताब्दी में लिखे गए एक प्रसिद्ध ग्रंथ ''पंचतंत्र'' मे छत्तीस रागों गए जाने का संकेत मिलता है। ''इसमें एक गदहा और एक गीदड़ की कहानी आती है जिसमें गधा रात्रि की सुन्दरता को देखकर गीदड़ से पूछता है कि वह गाना चाहता है। अतः कौन सा राग गाए? गीदड़ के यह कहने पर कि'' वह संगीत के बारे में क्या जानता है?'' गधा अपने संगीत ज्ञान का परिचय देते हुए कहता है कि मैं तुम्हें संगीत शास्त्र के बारे में बताता हूँ कि सात स्वर है, तीन सप्तक होते है इक्कीस मूर्च्छनाएँ है, गायन के छह भेद है, नौ रस है और छत्तिस वर्ण है।'' यह वर्ण शब्द को राग नहीं समझ सकते इसलिए इसे रागिनी समझना उचित होगा। अतः पंद्रहवीं शताब्दी से सत्तरहवीं शताब्दी के मध्य जो वर्गीकरण हुआ वह राग – रागिनी, पुत्र, पुत्र बधु के आधार पर हुआ और इस वर्गीकरण के मत 'भरत' 'हनुमान' 'सोमेश्वर' और कल्लिनाथ कहलाए। पुष्टिमार्गीय संगीत में प्रयोग किए जाने वाले रागों की सूचिः– देवगंधार, रामकली, भैरव, मालकोश, विलावल, ललित, सूहा, तोड़ी, आसावरी, धनाश्री, सारंग, काफी, कान्हरा वसंत, मल्हार, सारंग, रायसा, हमीर, विहाग, केदार मारू, नंट, सोरठ, ईमन, खमाज, पूर्वा, गौरी, जैतश्री, जैजैवंती, अड़ाना, मालव, पंचम, षट, शंकराभरण, कर्णाटकी, विहागड़ा, जंगल, झिंझोटी, सुधराई, परज इत्यादि।

शैली : – वैष्णव सम्प्रदाय ने अपने धर्म का प्रचार प्रसार करने के लिए राधा – कृष्ण और बालकृष्ण की लीलाओ के पदो को बडे रसमय और भावमय तरीकों से संगीत के सुर, लय और ताल में संजोकर जनता के सामने रखा। जिसके कारण भक्ति संगीत का

स्वरूप जन – जन तक पहुँचा। इनके अनेकों कीर्तन पद्धतियों और मंत्रों में जो शास्त्रीय संगीत का प्रभाव था उसे आज भी भजन आदि में देखा जा सकता है। इन गीतों की एक मुख्य बात थी कि इन संतों ने जो पद – गायन क्रिया वह भले ही विष्णु पद के नाम से प्रसिद्ध था लेकिन उनके ढ़ंग पूर्णतः ध्रुवपद, धामार शैलियों पर था। ''भक्ति परक पद या विष्णु पद शास्त्रीय संगीत की ध्रुवपद – पद्धति के जनक है।'' अर्थात् भारतीय संगीत शुद्ध और शास्त्रोक्त कहलाई जाने वाली '' ध्रुवपद – धामार'' जैसी गायन शैलियों का विकास हवेली – संगीत या देवालयों में गाए जाने वाले कीर्तनों और भजन से हुआ। 'पुष्टिमार्गीय वैष्णव मन्दिरों का संगीत' पूर्णतः ध्रुवपद धामार शैलियो पर ही आधारित था। तत्कालिन जितने भी इस परम्परा के संत थे वे जो भी गाते थे उसका आधार ध्रुवपद और धामार ही था। हिन्दुस्तानी संगीत के मध्यकाल में ध्रुवपद धामार काफी प्रचलित था। कृष्ण का गुणगान भक्ति भरक पूरा ध्रुवपद में होता था और धामार के अन्तर्गत राधा – कृष्ण के होरी के लीलाओं का वर्णन होता था।

ध्रुवपद गायन शैली के आविष्कारक –

ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर का माना जाता था। उनका काल १५४३ वि० स० से १५७६ वि० स० तक माना जाता है। ये बातें औरंगजेब बादशाह का काश्मीर का सुबेदार ने ''मानकुतहल'' में कहीं है उसका नाम था फकीरूल्ला इसने ''मानकुतूहल'' का फारसी में अनुवाद किया था।

''राजा मान सिंह ग्वालियर का शास कथा और उसका संगीत शास्त्र विषयक ज्ञान तथा कीर्ति अनुपम है। कहते हैं कि सबसे पहिले ध्रुवपद का आविष्कार राजा मान सिंह ने किया था।''(३)

राजा मान सिंह के काल में पुष्टिमार्गीय संगीत का सुत्रपात माना जाता है। उस समय स्वामी हरिदास वृन्दावन में रहते थे और तानसेन आगरे में। मथुरा, वृन्दावन, आगरा, ग्वालियर का रूप में ध्रुवपद शैली से प्रभावित था। उस समय ये लोग कुंभनदास जी के प्रायः समकालीन थे। अकबर के दरबार में जितने गायक थे वे सब के सब ध्रुवपदिये थे। उस समय के पदों की प्रथम तूक के पाश्चात ।। धृ ।। अथवा ।। ध्रुव।। ऐसा लिखा जाता था। इससे भी साबित होता है कि उस समय के सारे कीर्तनों का आधार ध्रुवपद और धामार ही था।

ध्रुवपद और विष्णुपद दोनों में कुछ विद्वान विषमता बताते है। कुछ कहते है कि पुष्टिमार्गीय कीर्तन का आधार विष्णुपद है कुछ कहते है कि नहीं ध्रुवपद था ध्रुवपद शैली न मानने की ऐसे लोगों के पास एक ही दलील है '' आइने अकबरी '' के अनुसार उस समय जो ध्रुवपद गाता था उसे कलावंत और जो कीर्तनियाँ थे उसे विष्णुपद गायक कहते थे। लेकिन विष्णुपद और ध्रुवपद में मतभेदों के साथ एक बात स्पष्ट था कि '' विषय – वस्तु'' की दृष्टि से अष्टछाप आदि कवियों की रचना को विष्णुपद के नाम से भले ही पुकारा गया हो लेकिन गायन शैली की दृष्टि से वह ध्रवपद शैली में ही निबद्ध होकर गाया जाता है क्योंकि ध्रुवपद और विष्णुपद में मात्र विषयवस्तु का अन्तर बताया गया है। राजा मान सिंह ने (जो हिन्दुस्तानी गान विद्या और साहित्य शास्त्र को खुब जानता था) लोगों को आसानी से समझने के लिए गवालियर की बोली में नई चाल का गाना निकाला जिसके तीन दरजे रखे (१) विशान पद श्री कृष्ण की तारीफ में (२) जो बड़े आदमियों की तारीफ में हो। (३) ध्रुवपद जिसमें नेह प्रीत की बातें हो।(१)

(१) शाहजहाँनामा (मुंशी देवी प्रसाद कायस्थ मुंसिफ जोधपुर ने बादशाह नामें वगैर का फारसी तवारीख की किताबों का सार लेकर हिन्दी में बनाया, संवत्–१९५३)

अर्थात् ध्रुवपद गीत के आधार सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी बहुत है। ध्रुवपदों का आधार वर्ण्य विषय अधिकतर नबाबों और राजाओं की प्रशंसा तथा ईश्वर की भक्तिपूर्ण स्तुतियाँ है। इसके अलावे अनेक धार्मिक, सामाजिक, रीति –रिवाजों, वेदान्त के सिद्धान्तों तथा

भक्तिमार्ग के पंथों और विभिन्न पर्वो का विस्तृत रूप प्राप्त होता है। हजारों वर्षो की सांस्कृतिक परम्परा की धरोहर ध्रुवपद शैलियाँ है। इस शैली के वर्ण्य विषय वस्तुत: ईश्वरोपासना एंव उनके गुणों का गान हैं। स्तुति परक गीत हैं। भारतीय संगीत की अध्यात्मिक आत्मा के दर्शन ध्रुवपद गीतों में होते हैं। रागों को देवता के रूप में मानते हुए, उनकी अवतारणा के लिए ईश्वर नाम के अक्षरों कों लेकर आलाप करना ध्रुवपद गीत की पहचान है। शुद्ध और स्पष्ट शब्दोच्चारण और स्वरोच्चारण ध्रुवपद की विशेषता है। इसलिए ध्रुवपद, शब्द और स्वर प्रधान गीत शैली मानी गई है। ध्रुवपद, स्वर, लय, शब्द, ताल प्रधान, गीत शैली होने के कारण यह एक मर्दाना गीत समझा जाता है। ध्रुवपद में मुख्य रूप से चार बानियाँ है। ये क्रमश: गोबरहारी बानी, खंडारी बानी, डागुर बानी और नोहार बानी। बानी का मतलब ध्रुवपद गायकों की अलग – अलग या रितियाँ (बानी) थी। चारों बानियों के चार कलाकार थे। तानसेन, ब्रजचन्द, राजा समोखन सिंह और श्री चन्द। कुछ विद्वानों के अनुसार ' बानी ' वाणी शब्द का अपभ्रंश रूप है अत: बानी का सम्बन्ध शब्दोच्चार से होने के कारण इसे वानी कहा गया। संगीत में स्वरोच्चार के साथ शब्दोच्चार का महत्व है और स्वर, शब्द की प्रधानता ध्रुव्रपद गीतों में होती है। अलग – अलग कलाकारों की कंठगत विशेषता, संस्कार, स्वर, शब्दोचार की भिन्नता होने के कारण ध्रुवपदियों की अलग – अलग रीति या (स्टाइल) होने से इन वानियों का प्रचार हुआ।

पुष्टिमार्गी संगीत में ध्रुवपद के चार भागों का आलाप करके गाना प्रारंभ होता है। ध्रुवपद के चारों चरणों स्थायी, अन्तरा, संचारी, आभोग में आलाप होता है।

नंददास के रचनाओं का गायन ध्रुवपद शैली में गाया जाता था उसके चार चरण थे, स्थायी अन्तरा, संचारी आभोग, उनकी बानियाँ भी अलग – अलग होती थी। इन गीतों में चारताल, तीव्रा, सूलताल ब्रह्मताल, इत्यादि तालों में ध्रुवपद के गीतों को गाया जाता है।

हवेली संगीत की विशेषताओं में स्पष्ट अंकित है कि हवेली संगीत के पद और कीर्तन उच्चकोटी के ध्रुवपद और धामार के रूप में विकसित हुआ है। धमार गायन भी ध्रुवपद शैली पर रचित एक गान शैली है। जिसमें होरी धूम – धाम के साथ जिस गीत का गायन होता है उसे धमार शैली कहते है। चौदह मात्रा के धमार गायन शैली में अधिकांशत: होरी सम्बन्धी पदों की रचना होती है। ध्रुवपद की तरह ही इसमें भी लयकारी प्रधान गीत होता है। होली के दिनों में पखवज, मंजीरा, झाल आदि के साथ इस गीत को बड़े उत्साह और उमंग से गाया जाता है।

धमार गायकी एक रंगारंग परम्परा की गायन शैली हैं। इसी कारण 'धमार' को धमाल – धमार और धमारी के नाम से भी पुकारा जाता है। धमाल का अर्थ धमा या चौकड़ी करना है। धमार या धमाल शब्द की व्युत्पति संस्कृत भाषा 'धम्' धातु से हुई है, इस धातु के अच् प्रत्यय लगाने पर धमाल या धमार शब्द बनता है। स्व० आचार्य बृहस्पति के अनुसार – ''धमार की उत्पत्ति हुई है जिसका अर्थ हैं सुलगना, भड़काना इत्यादि। इस शब्द की व्युत्पत्ति धम इव जृच्छति, धम + कृ+ अच् हो सकती हैं। जिसका अर्थ है गान का वह प्रकार, जो प्रेरित करता हुआ अथवा फड़काता हुआ चले। धमा–चौकड़ी, धूम–धाम और धमाधम जैसे शब्दों में संस्कृत की धातु 'धम'का प्रभाव है।''

धमार एक सामूहिक गीत है जो टोलियों में गाया जाता है। होली के दिनों में होली खेलने वाली टोलियाँ रंग खेलती हुई धमार गाती है। आज भी ब्रज के गोकुल बरसाने में होली गीत के रूप में धमारों का गायन बड़े उल्लास से किया जाता है। धमार गीतों का वर्ण्य विषय होली से संबंधित रहता है। जैसे होरी खेलेई बनैगी, रूसौ अब न बनैगी अर्थात् अब तो होली खेले ही बनेगी रूठने से कुछ नहीं होता।

धामार गीत के भी चार खण्ड होते है। स्थायी,

अन्तरा, संचारी और आभोग। यह गीत लयकारी प्रधान होता है। इसमें भी दुगुन, तीगुन, चौगुन और आड़ लय होता है। धामार के गीत चौदह मात्रा में पखावज पर बजते है। पुष्टिमार्गीय संगीत में होली आंनदोत्सव का पर्व माना जाता है। यह फाल्गुन शुक्ल पक्ष पूर्णिमा को मनाया जाने वाला पर्व है। यह उत्साह और उमंग का पर्व है। होली के आंनदोत्सव का वर्णन अष्टछाप कवियों ने सबसे अधिक किया है। जिसमें फाल्गुन के रंग अबीर गुलाल आदि का वर्णन रहता है। फागलीला के अन्तर्गत नंददास की गोपियाँ नाना प्रकार के वस्त्राभूषण पहने हाथों में कनक – पिचकारियाँ लेकर रास्ते में केसर तथा बूका – वंदन उड़ाती हुई कृष्ण के पास जाती हैं कृष्ण सखाओं सहित हाथ में कनक – पिचकारी लेकर तत्पर हो जाते हैं। गोपियों पर पिचकारी में रंग भरकर डालते है। चारों ओर गुलाल घुमड़ने लगता है। लोग तान देकर उमंग से गाने लगते हैं। यह होली का गीत प्रस्तुत है :–

हो, हो होरी खेलें नंद को नव रंगी लाला।
अबीर भरि – भरि झोरिन, हाथ पिचकारी रंगन बोरी।।
तैसीये रंगीली ब्रज की बाला।।
मूरति धरै अनंग, गावत अति तान तरंग,
लाल, मृदंग बजावै मिलि बीना बैनु रसाला।
नंददास प्रभु प्यारी खेलत,
रंग रह्यो छबि बाढ़ी, (३)
छुटी है अलक, टुटी है मालाा।।

राधा भी किसी से कम नहीं। जिस प्रकार महासुभट संकेत सुनकर युद्ध करने तैयार हो जाता है उसी प्रकार राधा सखियों के कहने पर हाथ में पिचकारी लेकर होली खेलने जाती है और प्रिय की ओर कुटिल कटाक्ष छोड़ती हुई रंग छिड़कती है –

उठी बिहंसि वृखभानु – कुवरि बर,
कर पिचकारी लेत।
सहि न सकत ज्यौं महा
सुभट कोड सुनत समर संकेत।। (४)

होली के रंग में सब रंग जाते है –

'संग लै रंग – भीने ग्वाल,
सब गुन रूप – रसाल,
रंगल –रंग हो – हो होरी।। (५)

नंददास ने अनेक पदों में 'हो – हो होरी' की ध्वनि करते हुए जनसमूह को ब्रज की गलियों के प्रविष्ट कराकर सामूहिक उल्लास और उमंग का दृश्य प्रस्तुत कर दिया है। होली के अवसर पर नंददास ने ताल मृदंग, मुरज, डफ, ढ़ोल, टनक आदि वाद्य बजाए जाने की बात कह भारतीय संस्कृति की ओर संकेत किया है – बाजत ताल, मृदंग, मुरज, डफ कही न परत कुछ बात।

रंग सौं मनि ग्वाल – बाल सब, मानो मदन बरात।। निष्कर्ष रूप में नंददास की रचनाओं की संगीतात्कमता उनकी गायन शैलियों पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। अष्टछाप के संतों की रचनाएँ मूलत: ध्रुवपद और धमार की शैलियों में ही गाया जाता था। आठों याम के कीर्त्तन को मुख्य रूप से इन्हीं शैलियों में गाया जाता था। मध्यकाल को संगीत का स्वर्ण काल कहा जाता है। इसमें मुख्य भूमिका मुगलकाल के बादशाहों के साथ – साथ अष्टछाप के संतों का है जिसमें नंददास प्रमुख है।

संदर्भ सूचि:–

(१) संगीत दर्पण' पृ० २५
(२) मानसिंह और मानकुतूहल हिन्दी अनुवाद हरिहर निवास द्विवेदी, पृ० ११ – १२
(३) पदावली – १७५
(४) पदावली – १७६
(५) पदावली – १७७

रागांग प्रणाली तथा उसका उत्तर भारतीय संगीत में महत्व

प्रा. डॉ. श्वेता दी. वेगड
संगीत विभाग,
श्रीमती रेवाबेन मनोहरभाई पटेल
महिला महाविद्यालय,
भंडारा. महाराष्ट्र.
ashwetavegad@gmail.om

रागांग प्रणाली :– राग और अंग इन दो शब्दों को मिलाकर रागांग बना है। राग का वह आवश्यक अंग अथवा खंड जो राग के स्वरूप का निर्माण करे, रागांग कहलाता है। कुछ प्रमुख रागों मे ऐसे स्वरसमूह होते हैं जिनसे उनकी स्वतंत्र छबि बनती है, ऐसी ही स्वतंत्र छबि बनाने वाले स्वरसमूह रागांग कहलाते हैं और स्वतंत्र अंग वाले राग 'रागांग प्रमुख राग' माने जाते हैं। जिस प्रकार लोकोक्तियाँ एवं मुहावरे भाषा की सुंदरता बढ़ाते हैं, उसी प्रकार रागांग राग परिचय के साथ ही रंजकता बढ़ाने में भी सहायक सिद्ध होते हैं।

''रागांग से तात्पर्य ऐसे विशिष्ट स्वर समूह से है जो राग को विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान करता है और यह अंग अन्य रागों में दुहराया जा कर, नए–नए राग रूपों को जन्म देता है तथा राग पहचान में भी सहायक सिद्ध होता है।''

अंग का अभिप्राय राग की प्रमुख स्वरावली में प्रयुक्त होने वाली विशिष्ट स्वर संगति से है। श्री विमलाकांत राय चौधरी अंग के विषय में कहते है इसका शब्दार्थ है अवयव या भाग। इसका अर्थ पूर्वांग अथवा उत्तरांग भी हो सकता है अथवा इसका अर्थ भिन्न राग की छाया भी हो सकता है, जैसे राग गौरी का एक प्रकार में राग ललित अंग का बताया जाता है। यानी गौरी के इस प्रकार में राग ललित की छाया मिलती है। अंग का शब्दकोषीय अर्थ है। अत: रागांग को राग का महत्वपूर्ण अंश,आवश्यक तत्व अथवा अवयव मानना चाहिए। यह महत्वपूर्ण रागांग विशिष्ट रागों के समुह में सामान्य होकर उस राग समूह की अलग पहचान बना देता है। डॉ. श्रीमती कृष्णा बिष्ट के शब्दों में "h "Just as the idiom and not merely grammer makes a language so also it is the anga and not merely the scale of a Raga that is its distinguishing feature."

रागांग पद्धति का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य:–

विशिष्ट स्वर समूह के माध्यम से रागांग की पृथक पहचान की परिपाटी बहुत प्राचीन है। क्रियाकुशल गुणियों में कानड़ा अंग सारंगादि अंगों की चर्चा गुरू परपंरा से चली आ रही है।

रागांग अर्थात् रागों की गायन विधि। रागांग में राग के अंग स्वरूप स्वरसमूह एवं रागों का चलन भी निर्भर करता है। इसके अंतर्गत रागों की चंचलता, गंभीरता अथवा द्रुत व विलंबित लय में स्वरों का प्रयोग भी सम्मिलित है। एक समान स्वरों का आरोह–आवरोह होने पर भी वादी, संवादी व न्यास स्वर के परिवर्तन से नए रागों का जन्म होता है। अधिकांशत: इनका प्रतिरूप प्राचीन स्थायों में उपलब्ध है। स्थाय वह छोटे–छोटे स्वर समूह हैं जिनसे रागालाप की रंजकता में वृद्धि होती है। कुछ स्थाय, जीव स्वर या वादी स्वर के तथा इनमें गमकों का भी प्रयोग किया जाता है। स्वरों के चलन (लय) लंघन, बहुत्व प्रयोग, मंद्र, मध्य, तार सप्तक तीनों के स्वरसप्तकों का एक साथ व्यवहार, स्वरों को चक्राकार में लेना, स्वरों का सीधा व्यवहार, कटे–कटे स्वरों का प्रयोग, कर्शण युक्त स्वरों का प्रयोग आदि कई प्रकार के स्वरों के प्रयोग से निर्मित स्थाय रागों के स्वरूप के अनुसार लिए जाते हैं।

इसके अलावा देशी रागों को रागांग, भाषांग, क्रियांग एवं उपांग इन चार वर्गो में विभाजित करने का उल्लेख आचार्य मतंग के काल में भी प्राप्त होता है। संगीत रत्नाकर के टीकाकार श्री सिंहभूपाल और श्री

कल्लिनाथ दोनों ने कुछ पाठ भेद से इस संदर्भ में मतंग मत का उल्लेख किया है। सिंहभूपाल के अनुसार ;

उक्तानां ग्रामारागाणां छायामात्रं भजन्तिहि।

गीतज्ञैः कथिताः सर्वे रागांगस्तेन हेतुना ।।

अर्थात् संगीतज्ञों के कथनानुसार जिन रागों में ग्राम रागों की छाया मात्र हो वे राग, रागांग राग कहे जाते हैं। रागों की छाया स्वरसमूह में दिखाई देती है, जिसके श्रवण से रागमर्मज्ञों को यह पता चल जाता है कि इस स्वरसमूह में अमुक राग झाँक रहा है, यही छाया है। मध्य काल में इस सिद्धांत का और अधिक विस्तार हुआ। संगीत पारिजात आदि ग्रंथों मे एक राग के अनेक भेदों में इस सिद्धांत का प्रभाव दिखाई देता है। आगे चलकर पंडित भावभट्ट ने राग–भेद वर्गीकरण के रूप में इसका उल्लेख किया है, जिसमें बिलावल, कल्याण आदि १८ भेदों में १४८ रागों के नाम उपलब्ध होते हैं। रागांग वर्गीकरण का प्रभाव मेल सिद्धांत के अंतर्गत रागों को वर्गीकृत किये जाने के पश्चात् भी दिखाई देता है। कुछ विद्वानों के अनुसार रागांग वर्गीकरण पद्धति को प्रयोग में लाने का श्रेय स्व. पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर के शिष्य स्व. नारायण मोरेश्वर खरे को है।

''राग रागांग प्रणाली को समझने के लिए निम्नांकित तीन प्रकारों को समझना होगा;

१. स्वतंत्र राग :– वह राग जिनके चलन पर विस्तार में वादी, संवादी, अल्पत्व, बहुत्व आदि नियमों का यथासंभव पालन होता हो, स्वतंत्र राग कहलाते हैं।

२. रागांग राग :– किसी स्वतंत्र राग का वह विशिष्ट स्वर समूह, जिसके द्वारा एक राग का स्वरूप उद्घाटित होता है, रागांग कहलाता है।

३. अंगभूत राग:– वह राग जिनमे किसी स्वतंत्र राग के रागांगों की छाया दृष्टिगोचर होती है, वह राग उस स्वतंत्र राग के अंगभूत राग होते हैं।

राजा मानसिंह तोमर और हुसैन शाह शर्की आदि ने रागों का वर्गीकरण इसी पद्धति से प्रस्तुत किया है। पं. नारायण मोरेश्वर खरे ने २६ रागों के अंतर्गत उनके रागांगों के आधार पर १३२ अंगभूत रागों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है।''

इसके पश्चात् पंडित भातखंडे एक मेल के अंतर्गत अनेक रागांगों का समावेश करते हैं। उदाहरणार्थ काफी मेल के अंतर्गत उन्होंने काफी अंग, धनश्री अंग, कानड़ा अंग, सारंग अंग और मल्हार अंग के रागों का स्पष्ट उल्लेख करते हुए समावेश किया है। एक ऐसा स्वरसमूह जिसका कई रागों में समान रूप से उपयोग हो और वह उन सभी रागों में से किसी प्रमुख राग का मुख्य अंग हो, उसे उन सभी रागों का रागांग कहा गया है। उदाहरणतः 'नि प ग म रे स' यह स्वरसमूह एक संपूर्ण कानड़ा अंग है, जो कि दरबारी कानड़ा के साथ ही सूहा, सुघराई, अड़ाना, नायकी आदि सभी कानड़ा प्रकारों का रागांग है।

रागांग पद्धति में थाट और मेल को ध्यान में रखे बगैर रागों के संचारों या स्वरसमूहों के आधार पर विभाजित किया जाता है। एक ही थाट से उत्पन्न होने वाले राग अलग–अलग रागांगों के कारण अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखते हैं तथा भिन्न थाटोत्पन्न राग भी समान रागांग के कारण, उस विशिष्ट रागांग के राग कहलाते हैं। रागांग पद्धति की विशेषता यह है कि जिन रागों में रागांग का प्रयोग होता है उनमें भी प्रायः उस रागांग का नाम सम्मिलित कर दिया जाता है, जैसे तोड़ी का रागांग है 'रे गरे सा'। यह जिन रागों में आता है उनमें भी तोड़ी का उपनाम प्रयुक्त होता है किंतु रागांग के नाम से रहित भी कई रागांग युक्त राग हैं, जैसे कल्याण अंग के राग चंद्रकांत, भूपाली आदि।

मेल राग वर्गीकरण पद्धति में भी इस वर्गीकरण का प्रबल प्रभाव, इस वर्गीकरण की सशक्तता, अनिवार्यता एवं आवश्यकता का प्रतिपादक है। इस प्रबलता का प्रमुख कारण यही है, कि राग की सामान्य पहचान तो स्वरों के द्वारा हो जाती है, परंतु सूक्ष्म पहचान विशिष्ट स्वरसमूहों के माध्यम से ही होती है। यही स्वरसमूह प्रधान पहचान, रागांग कहलाती है। ''थाट पद्धतीतील दोष काढून रागांग पद्धती योग्य व्हावी या उद्देशाने काही प्रमुख रागांग निश्चित केल्या गेले. त्यात दहा थाट सुध्दा स्विकृत करून पंडितांनी आरंभी २५ तर काहींनी ३० रागांग निश्चित केलेत. ते असे कल्याण अंग, बिलावल

अंग, खमाज, भैरव, पूर्वी, मारवा, काफी, आसावरी, भैरवी, तोडी, सारंग, कानड़ा, मल्हार, भीमपलास, ललित, पिलु, सोरठ, विभास, नट, श्री, बागेश्री अंग, केदार, षंकरा, हिंडोल, भूपाली, आसा, बिहाग, कोमाद, दुर्गा, भटियार पण इथे सुद्धा दोष निर्माण होऊ लागलेत. या अंगाना निश्चित क्रम, निश्चित संख्यात्मकता, गणीताच्या किंवा नियमाचा आधार नसल्यामुळे प्रत्येकांचा कल्पनेनुसार रागांगांची संख्या कमी अधिक होत गेली.'

कुछ भी हो, हर प्रयास अपनी विशेषता रखता है। राग वर्गीकरण संबंधी यह प्रयास भी कम महत्वपूर्ण नहीं है, तथापि सिद्धांतों के नवीनीकरण के लिए सत्त् कटिबद्ध रहने की अनिवार्यता बनी रहती है। प्रबुद्ध शास्त्रकार इसको ध्यान में रखते हैं और इसी के अनुसार सिद्धांतों के संवर्धन और नवीन सिद्धांतों के निर्माण को उचित मानते हैं।

पं. भातखंडेजी के रागांग पद्धति के अलावा भी अनेक संगीत विचारकों ने इस समस्या का समाधान ढुंढने का असफल प्रयास किया है। उन्हीं आधुनिक संगीतज्ञों में सुलभा ठकार का नाम भी अग्रणी है। इन्होंने अपनी मेल व्यवस्था, स्वरों के विकृत अवस्था को ध्यान में रख कर अपनी पुस्तक 'भारतीय संगीत शास्त्रः नवा अन्वयार्थ' में प्रस्तुत की है। उन्होंने सारे शुद्ध, एक विकृत, दो विकृत, तीन विकृत, तीन विकृत, चार विकृत, पाँच विकृत तथा एक ही स्वरों के दो रूपों को लेकर १९६ मेल बनाए हैं।

पद्धति चाहे कैसी भी हो, जब वह प्रचार में आ जाती है और एक परंपरा का रूप धारण कर लेती है। रागांग वर्गीकरण प्रणाली भी अपना विशिष्ट महत्व रखती है और उसे एक वर्ग विशेष का महत्व भी प्राप्त है। राग लक्षण के संदर्भ में उसका उल्लेख भी बहुत अधिक होने लगा है। स्वयं भातखंडेजी ने भी थाट के साथ–साथ रागांग के महत्व को भी स्वीकार किया है तभी तो उन्होने भूपाली तथा देशकार के लिए विभिन्न थाटों का प्रयोग किया है।

दक्षीणी संगीत में एक स्वरावली से एक ही राग निकलता है, जबकि हिंदुस्तानी संगीत उत्तरी में समान स्वरों वाली एक स्वरावली से चार और कभी कभी इससे भीअधिक राग उत्पन्न हो सकते है। हिंदुस्तानी संगीत की इस विशिष्टता का श्रेय रागांग पद्धति को ही है। उदाहरण के लिए औडव स्वरावली सा रे ग प ध से चार राग उत्पन्न होते है। भूपाली, देसकार, जैतकल्याण ओर शुद्ध कल्याण। जबकि कर्नाटक संगीत में उपर्यक्त स्वरावली से केवल एक राग मोहनम् उत्पन्न होता है।

सा रे ग म ध नि स्वरावली से पूरिया, मारवा और सोहनी उत्पन्न होते है।

सा रे ग म प ध नि स्वरावली से भैरव, कालींगडा और गौरी उत्पन्न होते है।

सा रे म प नी स्वरावली से मधमाद सारंग और मेघ उत्पन्न होता है।

सा रे म प ध स्वरावली से दुर्गा और शुद्ध मल्हार उत्पन्न होते है।

यही तो उत्तर के संगीत की विशेषता है कि इसमें अंग के द्वारा हम कई रागों का निर्माण कर सकते है। जैसे सारंग में मिंया मल्हार को मिलाकर मियां की सारंग, मिंया तानसेन की उपलब्धि है। इसी प्रकार जोगकंस, नटभैरव भी अंग की ही विशेषताऐं है। आज अंग रागों में एक विशिष्ट स्थान बना चुका है। जबकि दक्षिणी कर्णाटकी संगीत पद्धति में इसके विषय में कुछ नहीं कहा गया। उनके राग मेल पर आधारीत है। परंतु उत्तरी हिंदुस्तानी संगीत में थाट की सिमा को तोड कर अपना व्यावहीर रूप धारण करता है तो उसमें लगने वाले थाट के वे स्वर अपना सजीव रूप धारण करके तथा नियमित स्वरी संगति और चलन से रागों में समानता एवं विभिन्नता लाते है।

रागांगों का महत्व : अंग के गठन में न्यास गमक, मिंड आंदोलन, कण स्थान, चाल इत्यादी तत्वों का महत्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि इन तत्वों के अभाव अथवा प्रयोग से ही एक ही स्वरावली विभिन्न रागांग हो सकती है। रे प सर्वसम्मती से मल्हार अंग समझा जाता है। परंतु इसका प्रयोग और रागों में भी हो सकता है। जैसे सारंग में रे प म रे कामोद में मरे प ग म प ग म रे सा, देस में रे प म ग रे । किंतु इस रे पका प्रयोग मल्हारों

में एक विशेष प्रकार से ही किया जाता है। रे पर मध्यम का कण लगाावर किंचीत झुलाया जाता है। तथा प को रे मिंड के साथ लिया जाता है। म म प प रे भी कई रागों के मुख्य स्वरावली के अंगीभूत हैं। जैसे छायानट तथाश्शुद्धकल्याण में गंधार के खटके के साथ रे का प्रयोग होता है। जयजयवंती में भी प रे की संगति मान्य है। मंद्र प से मध्य रे ग के कण से लिया जाता है – प रे।

आधुनिक संगीतकारों में नए नए रागों की रचना करने की प्रवृत्ति बहुत अधिक होती जा रही है। परंतु नवनिर्मित राग प्राय: दोषयुक्त होतें है। इसका एक मात्र कारण है रागांग की अज्ञानता। जैसे भैरव में केवल ऋषभ शुद्ध कर देने से नट भैरव नहीं बनता। मालकौंस में कोमल गांधर के स्थान पर शुद्ध ऋषभ शुद्ध कर देने से नट भैरव नहीं बनता है। मालकंस में कोमल गंधार के स्थान पर ऋषभ लगा देने से सारंगकौंस नहीं बन सकता है। यद्यपि एक ऐसा राग सा रे म ध नि सां आजकल सुनने में आता है। रचनाकार ने पूर्वांग सारंग के रे म तथा उत्तरांग में मालकंस के ध नि को जोडकर संभवत: इस राग कीं रचना की है। परंतु पूर्वार्द्ध में रे म अन्य कई रागों में भी तो है। उदाहरण के लिए राग दुर्गा को लिया जा सकता है तथा सारंगकौंस को क्यों न दुर्गाकंस कहें? सारंगकौंस नाम को सार्थक बनाने के लिए पूर्वांग में सारंग के प्रमुख अंगों को समुचित रूप से उभरना नितांत आवश्यक है। जैसे – रेमरे निसारे सारे इत्यादी।

प्रारंभिक विद्यार्थियों के लिए थाट वर्गीकरण प्रणाली ही सहज बोधगम्य हो सकती है फिर क्रमश: जैसे–जैसे रागों के स्वरूप पर अधिकार होने लगे तब रागांग पद्धति की गहनता को समझा जा सकता है।

डॉ. कृष्णा बिष्ट के शब्दों में ("In Hindustani Music the Thata are good to begin with, but to revert to our original similie - sense of anga like sense of idiom, develops only gradually." इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि हिंदुस्तानी संगीत में अंगों का अत्यधिक महत्व है।

संदर्भ ग्रंथ :

1.Significance of Ragang in Hindustani Music, Dr. (Mrs.) K. Bisht
२.भारतीय संगीत षास्त्र : नवा अन्वयार्थ, सुलभा ठकार
३.मुक्त संगीत संवाद, डॉ. गणेश हरि तारलेकर
४.संगीत संचयन, सुभद्रा चौधरी
५.हिंदुस्तानी संगीत में राग लक्षण, रेणू रंजन

वैश्विकीकरण आणि भारतीय संगीत

प्रा. डॉ. अस्मिता नानोटी
संगीत विभाग प्रमुख,
अशोक मोहरकर कला, वाणिज्य
महाविद्यालय
अड्याळ, ता.–पवनी, जि.–भंडारा
भ्रमणध्वनी–९३७१८४६४७३
mail - rpawadhoot@gmail.com

वैश्विकीकरण (Globalization) अर्थात विश्व–व्यापकता,वैश्विक स्वीकार्हता, वैश्विक समरसता. आधुनिक वैश्विकीकरणाची संकल्पना आमच्या राष्ट्राने ''वसुधैव कुटुंबकम्' या वैदिक सूत्राच्या रूपात प्राचीन काळातच उद्घोषित केली आहे. वैश्विकीकरण हे केवळ आर्थिक, सामाजिक तसेच राजनैतिक परिवर्तनाशीच संबंधीत नसून वि विश्वातील प्रत्येक समुदायाच्या सर्वोत्कृष्ट संस्कृती, परंपरा, कला, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, तांत्रिक अशा सर्वप्रकारच्या प्रतिमानांना विश्वस्तरावर स्वीकृत करणे म्हणजे वैश्विकीकरण होय. त्यामुळे भारतीय संगीत वैश्विकीकरणापासून दूर कसे राहू षकते? विविध देशांच्या सीमांमुळे, भाषांमुळे, सादरीकरणाच्या पध्दतींमुळे संगीताच्या एकसंघत्वात वैश्विक पातळीवर अंशिक भेद दिसत असला तरी भारतीय संगीत या अदृश्य भेदाला नष्ट करून वैश्विकीकरणात आपले योगदान देते आहे. खरे पाहता संगीत हे तर नैसर्गिकरित्याच विश्वव्याप्त आहे. सांस्कृतिक स्तरावर वैश्विकीकरणाच्या परिभाशेत वैश्विकीकरणाचे विश्वाचा संकोच आणि वैश्विक चेतना हे दोन मुख्य तत्व आहेत. संगीत हे व्यक्तिंपासून समाज, समाजापासून राष्ट्र, राष्ट्रांपासून विश्व अश्या मानवाच्या विविध समुदायांना एकत्र जोडण्याच्या श्शृंखलेतील एक महत्वाची कडी आहे.

भारतीय संगीताची वैश्विकीकरणातील भूमिका–

आज वैश्विक संस्कृतीला अश्या संगीत कलावंतांची आवश्यकता आहे की जे प्राचीन दर्पणपटलावर उमटलेल्या भेदभावयुक्त बिल्लोराला नष्ट करून विश्वएकतेची एक सुंदर व निर्मल प्रतिमा निर्माण करू शकतील. भारताचे पं. ओकारनाथांचे 'वंदे मातरम्' तसेच बडे गुलाम अली खॉ साहेबांचे 'हरि ओऽम' गायन राष्ट्रीय तथा वैश्विक चेतनेच्या बाबतीत अनुभूतीजन्य होय. संगीत कलावंत हा केवळ कलावंत असतो. न तो हिंदू असतो न मुसलमान न ख्रिश्चन, न विश्वातील कोणत्याही जाती, धर्म आणि पंथाचा असतो. त्याचा धर्म केवळ संगीत आहे. स्वरांच्या हिंदोळ्यावर मनमुराद आंदोलने घेतांना त्याला कोणत्याही मानवनिर्मित भेदभावांचे भान रहात नाही. पाकीस्तानचे विश्वविख्यात गायक सलामत अली साहेबांच्या वाराणशीतील एका शास्त्रीय संगीताच्या कार्यक्रमातील विधान संगीताच्या वैश्विक स्वीकार्हतेकडे निर्देश करते. सलामत अली साहेब भावविभोर होउन म्हणतात, ''मुल्क के अंदर सरहदे डाल देनेसे या सीयासी दिवारे खडी करनेसे दिलों मे सरहदे नही पड जाती। किसी भी मुल्कके अव्वाम हो, संगीत सुनने और दाद देने की अदा एक जैसी ही होती हैं। राग–मालकंस को कोई बाट देगा क्या?'' हे आहे संगीताचे विश्वव्याप्त नैसर्गिक स्वरूप! माझ्या मते वैश्विकीकरणाचा भारतीय संगीतावर होणाऱ्या प्रभावापेक्षा भारतीय संगीताचा हा प्रभाव वैश्विकीकरणावर जास्त प्रभावी ठरतो. विश्वातील विविध जाती धर्मांच्या आधारावर स्वतःच वेगळेपण जपू पाहणाऱ्या काही लोकांच्या प्रयत्नांविरुध्द विश्वएकत्मता टिकवून ठेवण्यासाठी संगीताची ही भूमिका निश्चितच मार्गदर्शक ठरु शकते. संगीताद्वारे जागृत व सृजनशील झालेले मानवीमन, विश्वमनाच्या कोमल भावना, सामुदायिक तादात्म्य तसेच विश्वकल्याणाला प्रेरित करते. संगीताचे शाश्वत

स्वरूप 'आनंद' आहे. केवळ संगीतच विश्वसमुदायाला विश्वव्यापी आनंद प्रदान करून विश्वकल्याणाच्या दिशेने अग्रेशित करु शकते.

काही वर्षापूर्वीच भारताचे प्रधानमंत्री मा. नरेन्द्र मोदींच्या संकल्पनेतून ''वैष्णव जन तो तेणे कहिये जे, पीड पराई जाणे रे....।'' हे राष्ट्रपिता महात्मा गांधींचे गीत १४५ देशांच्या कलाकारांद्वारे विविध देशांमध्ये सादर करण्यात आले. संगीताच्या माध्यामातून वैश्विक सुसंवादित्व स्थापित करण्याच्या दिशेने आमच्या प्रतिभाशाली प्रधामंत्र्यांयांद्वारे केला गेलेला हा एक यशस्वी प्रयोग आहे. अशा प्रकारच्या प्रयोगांद्वारे देश, धर्म, पंथ, लिंग आणि वर्णभेदांच्या पल्याड जाउन या वसुंधरेला एका कुटुंबाचे रूप देण्यात संगीत एक अहं भूमिका साकारू शकते यात काही संदेह नसावा. वैश्विक स्तरावर संगीताचा शारिरीक चिकित्सेसाठी वापर— संगीत ही एक प्रयोगशील कला आहे. वैदिक साहित्यात संगीताचे तीन अंग प्रतिपादिले आहेत. गीत, वाद्य तथा नृत्य. वैश्विकीकरणामुळे संगीत केवळ मनोरंजन करीत नाही तर ते आरोग्य वर्धक आहे हे आज सर्व जगाने मान्य केले आहे. स्वास्थ्य विशेषज्ञ डॉ. वर्नर मॅकफेडन संगीताला मानव उपयोगी व्यायाम मानतात. डॉ. लीय म्हणतात ''संगीतात इतके सामर्थ्य आहे की ते जर आपल्या दैनंदीन जीवनातील अपरिहार्यता म्हणून स्वीकारले तर ते विश्वातील अखिल मानवजातीसाठी निश्चितपणे लाभदायक सिध्द होउ शकते.'' ब्रह्मांडात प्रवाहित होत असलेले स्वर प्रवाह मानवी शरीरातही नित्य झंकृत होत असतात. मानवी शरीर जसे काही एक संगीत उपकरण आहे. शरीरसंगीताला अभ्यासाने अनुभवता येते. शरीरात नैसर्गिकरित्या निर्माण होणाऱ्या सूक्ष्म नादांच्या कमीअधिक होण्याने शारिरीक आणि मानसिक स्वास्थ्य असंतुलित होते. या असंतुलनाला संगीतातील स्वर विज्ञानाच्या आधाराने संतुलित करता येते. हृदय नित्य आपला ताल ठेका देत असते आणि त्यामुळेच पेशींचे व अवयवांचे संचालन होत. डॉक्टर स्टेथॅस्कोपने तपासतात किंवा नाडीतज्ज्ञ नाडीपरीक्षा करतात म्हणजे नेमक काय करतात तर, ते आपल्या हृदयसंगीताचीच परीक्षा करतात. आपल्या परिक्षणाद्वारे डॉक्टर हे जाणून घेण्याचा प्रयत्न करतात की, या शरीरातील श्शरीर संगीत बेसूर तर झाले नाही ना? शरीर संगीत बेसूर झाले की शरीर नानाविध व्याधींनी ग्रस्त आहे हे डॉक्टरांना कळते. पोटात घेतल्या जाणाऱ्या रासायनिक औशधांप्रमाणेच हे बेसूर झालेले षरीर संगीत गायन वादनासारख्या बाह्य आयामांनी सुध्दा सुस्वरित ;ज्नदम.नचद्ध करता येते या प्रयोगाला विश्वमान्यता मिळाली आहे. हा प्रयोग व त्याची विश्वमान्यता हीच संगीत चिकीत्सेचा मूळ मंत्र आहे. जर संगीताला भावना आणि प्रेरणांनी सुसज्जित ठेवले तर त्याचा परिणाम संगीत गाणाऱ्यावर व ऐकणाऱ्यावर सकारात्मक प्रभाव निर्माण करतो. जर कुणी मधुर संगीत ऐकेल, वाद्य वाजवेल, गायन करेल, तालाच्या गतीनुसार नृत्य करेल तर त्याचे शरीर, आतील दुषित तत्व बाहेर टाकते हे सुध्दा प्रयोगाने सिध्द झाले आहे. मनाला विश्राम आणि प्रसन्नता मिळणे हे श्शरीराच्या हलकेपणाचे द्योतक आहे. त्याचप्रमाणे गायन व वादनामुळे कलावंताच्या आंतरिक अवयवांना व्यायाम मिळून स्थास्थ्य संवर्धन तर होतेच पण आंतरिक दिव्य शक्ती सुध्दा प्रदीप्त होण्यास मदत मिळते. न्यूयार्क मधील प्रसिध्द चिकित्सक तथा संगीतज्ञ डॉ. एडवर्ड पोडोलास्की आपल्या संशोधनात लिहितात की गायनाने रक्त संचालनात वृध्दी होते. शरीरातील विविध धमन्यांमध्ये नवजीवनाचा संचार होतो. जे लोक गायन, वादन आणि नृत्याचा नियमित अभ्यास करतात त्यांच्यात फुफ्फुस व हृदयसंबंधीत रोग फार कमी प्रमाणात आढळतात.

डॉ. राल्फ लॉरेन्स हॉय यांनी वैश्विक संगीत चिकित्सेला एक नवी दिशा दिली आहे. R for R अर्थात 'रेकॉर्डिंग फॉर रिलॅक्सेशन, रिफ्लेक्शन, रिस्पॉस आणि रिकव्हरी' या नावाने हे प्रतिष्ठान आज साऱ्या अमेरिका आणि युरोपात प्रसिध्द आहे. या प्रतिष्ठानच्या

रेकॉर्डेड संगीत टेप आणि सीडीज्नी संगीत चिकित्सेत क्रांती केली आहे. हजारो लाखो लोकांना श्शारिरीक तथा मानसिक दृष्ट्या तंदुरुस्त केले आहे. या प्रकारची संगीत चिकित्सा आजकाल सर्व विश्वात होते आहे. या चिकित्सेचा लाभ आबाल—वृध्द, दुर्बल—समर्थ सर्वजण आपआपल्या पध्दतीने व क्षमतेनुसार घेउ शकतात. संगीताद्वारे केवळ मानवाच्याच नाही तर प्राणी आणि वनस्पतींना सुध्दा विकसीत व सुदृढ करता येते. या प्रयोगाच्या यशस्वीतेमुळे आज श्शेतकरी सुध्दा आपल्या पीकांना संगीत ऐकवतो आहे. संगीताची या क्षेत्रातील उपयोगीता मानवाच्या अन्नसमस्येवर रामबाण उपाय सिध्द होउ शकते. अर्थात विश्वातील सर्व सजीवांच्या शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्यासाठी संगीत प्रमुख भूमिका साकारू शकते. संगीताची चिकित्सा क्षेत्रातील ही प्रगती केवळ वैश्विकीकरणामुळेच शक्य झाली आहे कारण वैश्विकीकरणामुळे विचार, संशोधन तसेच तंत्रज्ञानाचे आदनप्रदान होते व सामुहिक कार्यामुळे लवकर प्रगती साधता येते. मानवी मन आणि शरीर सुदृढ राहण्यासाठी संपूर्ण विश्वात संगीत हे एकमेव औषध आहे असे म्हटल्यास अतिशयोक्ति ठरु नये. प्रत्येक देशाच्या सीमेवरील सैनिकांचे जीवन हे सर्वात जास्त तणावग्रस्त असते. त्याच्या मनावरील व बुध्दीवरील ताण दूर करण्यासाठी संगीत त्यांना सहाय्यभूत होउ शकते. गुरुदेव रविन्द्रनाथ टागोर, सुब्रमण्यम भारती, बंकीमचन्द्र चटोपाध्याय यांचे गीत आज ही आमच्या मनाला राष्ट्रीय एकात्मतेच्या विचारांनी प्रेरित व संभारित करते. वैश्विक स्तरावर संगीताचे सफल आणि नियोजनबध्द पध्दतीने वैश्विकीकरण केल्यास 'वसुधैव कुटुंबकम्' ही भारतीय उदघोषणा पूर्णत्वास नेण्यात संगीत निश्चितच सहाय्यकारी सिध्द होउ शकते.

योग आणि संगीत— योग आणि संगीत हे एक दुस—याचे अभिन्न अंग आहेत. स्वरसाधना ही मूळात एक योगिक क्रिया आहे. योग आणि संगीतामुळे मन, शरीर आणि आत्मा शुध्द होतात व त्यात नवचेतनेचा संचार होतो. योग आणि संगीताने मनुष्य उदासिनता व नैराश्यापासून मुक्ती मिळवू शकतो. शांती प्राप्त करून घेउ शकतो. भारताचे पंतप्रधान मा. नरेन्द्र मोदी यांच्या प्रेरणेने संपूर्ण विश्वाने २१ जून हा ''योग दिवस'' म्हणून स्वीकारला आहे. वैश्विक स्तरावर योगामध्ये शारिरीक व्यायामासोबत संगीताचे सुध्दा यशस्वी प्रयोग होत आहेत आणि त्याचे सकारात्मक परिणाम सुध्दा अनुभवायला येउ लागले आहेत. विश्वसमुदायाचे शारिरीक व मानसिक स्वास्थ्य सुदृढ राखण्यासाठी संगीत हे योगासोबत हातात हात घालून कार्य करीत आहे. संगीत आणि योग एकत्रितपणे विश्वसमुदायाला शारिरीक व मानसिकदृष्ट्या सशक्त करण्याचे कार्य करु शकतो. संगीताच्या वैश्विक आदानप्रदानातून नवनवीन राग रागिण्या, वाद्य व वादन पध्दती, नृत्यप्रकार वैश्विक स्तरावर उजागर होत असल्याने त्यांचा योगिकदृष्ट्या समन्वय साधून आपल्या देशातही सफल प्रयोग घडून येत आहेत. इतर क्षेत्रांसोबतच योग आणि संगीत क्षेत्रातील वैश्विकी करणाचा अंतर्भाव निश्चितच भारतीय योग आणि संगीत क्षेत्रावर प्रत्यक्षपणे प्रभाव टाकतो आहे व नवनवीन विचारप्रवाहांना व संशोधनांना आपल्यात सामाउन घेतो आहे.

वैश्विकीकरणामुळे संगीताचा तंत्रज्ञानावरील आणि तंत्रज्ञानाचा संगीतावरील प्रभाव— संगीताचा सजीव सृष्टीवर परिणाम होतो हे सर्वश्रृत आहे पण लंडन येथील क्विन मेरी विद्यापीठ आणि इंपेरियल कॉलेज मधील संशोधकांद्वारे सौर उर्जा निर्मितीत सोलर सेलची कार्यक्षमता वाढविण्यासाठी संगीताचा आधार घेतला जातो आहे. पॉप आणि रॉक संगीताच्या विशिष्ट प्रकारच्या कंपन्यांनी सोलार सेलच्या नॅनो रॉडची कार्यक्षमता ४० टक्के वाढत असल्याचे संशोधनात निदर्शनास आले आहे. लंडनमधील संशोधकांनी सोलर सेलमध्ये झिंक ऑक्साईडच्या अतिसुक्ष्म नलिकांना उपयोगात आणले आहे. झिंक ऑक्साईडच्या विशिष्ट गुणधर्मामुळे ७५ डेसिबल पेक्षा कमी क्षमतेच्या

ध्वनिलहरीचा सोलर सेलच्या कार्यक्षमतेवर सकारात्मक परिणाम होतांना दिसून येतो. या संशोधनामुळे विविध चार्जिंग उपकरणामध्ये संगीत लाभदायक ठरले आहे. संगीताच्या या प्रयोगात परिपूर्ण सफलता प्राप्त झाल्यास ज्या देशांत सूर्यप्रकाश कमी आहे तिथे भविष्यात सोलर सेलला चार्ज करण्यासाठी एखाद्या रॉक स्टारचा कार्यक्रम ठेवावा लागेल. हे केवळ वैश्विक आदानप्रदानामुळेच शक्य झाले आहे. या क्षेत्रात सुध्दा भारतीय संगीत आपले योगदान देउ शकते.

सद्ययुगात वैश्विकीकरणाच्या क्षेत्रात तंत्रज्ञान महत्वाची भूमिका निभावित आहे. या आधुनिक तंत्रज्ञानामुळे युवावर्ग प्रचंड प्रमाणात संगीताकडे आकर्षित होतो आहे. पाश्चात्य पॉप म्युझिक, डिझे, ऑर्केस्ट्रा, डिस्को, रिमिक्स या कलाविष्कारांनी भारतीय संगीतावर आपला प्रभाव प्रस्थापित केला आहे. त्यामुळे युवावर्ग जास्तीत जास्त पाश्चात्य संगीताकडे आकृष्ठ होतो आहे. त्यामुळे आमच्या भारतीय संगीताची परंपरा अबाधित राखण्यासाठी भारतीय संगीत सुध्दा विश्वव्याप्त करण्यासाठी प्रयत्न करणे ही काळाची गरज होउन बसली आहे.

भारतीय संगीत विष्वव्याप्त करण्याचे उपाय—

तंत्रिक व आर्थिक वैश्विकीकरणाच्या वाढत्या प्रभावाने विश्वात इलेक्ट्रानिक्स तंत्रज्ञानाचा व्यापक प्रमाणात वापर होतांना दिसतो आहे. कम्प्युटर, नेट, मोबाईल याचा लाभ सुध्दा संगीत क्षेत्राने करुन घेतला आहे. टी.व्ही. चॅनलवर होत असलेल्या 'सूर नवा ध्यास नवा' व इतर भाषेतल्या गायन वादन, नृत्य स्पर्धांमधून भारतीय संगीत विश्वव्याप्त होत आहे हा केवळ वैश्विकीकरणाचा भारतीय संगीतावरील प्रभाव आहे. स्पर्धा तसेच स्वतंत्र अलबम द्वारा भारतीय संगीत कलाकार सुध्दा विश्वाभिमुख होतो आहे. आपण या क्षेत्रात प्रयत्न करीत असलो तरी त्यात आणखी भर घालण्याची गरज आहे. त्यासाठी आमचे भारतीय संगीत विश्वव्याप्त होण्यासाठी जागतीक संगीत महोत्सवांचे आयोजन करणे तसेच पाश्चात्य संगीत कलाकांराचे कार्यक्रम भारतात आयोजित करणे, देशविदेशात सर्वसमावेशक विश्वविद्यालयांची स्थापना करणे व त्या माध्यमातून संगीताद्वारे आपल्या आणि पाश्चात्य देशाची विचारधारा, कला, संस्कृती, तत्वज्ञान यांचा एकमेकांशी परिचय करुन घेणे, वेळोवेळी बदलत्या सांगितीक प्रवाहांचे आदानप्रदान करणे, कलाकारांची प्रस्तुती व पाश्चात्य संगीताच्या प्रभावाचा अभ्यास करणे व त्यातून निर्माण झालेले वैश्विक संगीत आणखी लोकाभिमुख करण्यासाठी प्रयत्न करणे गरजेचे आहे. त्याच बरोबर आपले मूळ भारतीय संगीत या वैश्विकीकरणाच्या गदारोळात लुप्तप्राय होउ नये उलट ते आणखी प्रभावी होण्यासाठी कार्य करणे गरजेचे आहे.

जागतीक स्पर्धांच्या तसेच संगीत समारोहांच्या माध्यमातून विश्वजन एकत्र येतात त्यातून त्यांचे आचार विचार संस्कृती परंपरा कला यांचा परिचय करून घेउन एकमेकांप्रती विश्वास निर्माण होतो. निर्मल वातावरणाची निर्मिती होते. यामुळे जागतीक वैश्विकीकरणाच्या जीवघेण्या स्पर्धेत विश्वएकात्मता राखण्याचा प्रयत्न करणे, एकमेकांच्या कलेवर कुरघोडी न करता त्यांचाही आदर करणे हे उपाय करता येउ शकतात. एक स्वस्थ सुंदर विश्व निर्माण करण्यासाठी संगीताची भूमिका महत्वाची म्हणून निर्माण करणे हा विश्वव्याप्त संकल्प होणे गरजेचे वाटते. जे प्रयत्न होत आहेत ते निश्चितच प्रशंसनीय आहेत मात्र त्यांना आणखी नियोजनबध्द व प्रभावी करणे गरजेचे आहे. हा विचार दृढ झाल्याशिवाय वैश्विवीकरण या शब्दाला खरे 'वसुधैव कुटुंबकम्' हे स्वरूप प्राप्त होणे शक्य नाही.

निष्कर्ष—

१.वैश्विकीकरणाचा भारतीय संगीतावर जसा सकारात्मक परिणाम होतो आहे तसाच नकारात्मक परिणाम पण दिसून येतो आहे.

२.वैश्विक व्यापारासोबत वैश्विक मनाला सुध्दा एकदुसऱ्याशी जोडणे हा सुध्दा वैश्विकीकरणाचा प्रधान दृष्टीकोन असावा.

३.विश्वात षांती आणि सौहार्द्रपूर्ण वातावरण निर्माण होण्यासाठी संगीत वैश्विक करण्याची भूमिका निर्णायक ठरु शकते.
४. मानव चिकित्सेच्या क्षेत्रात संगीत चिकित्सा सुध्दा लाभदायक ठरू शकते.
५.वर्तमान स्पर्धात्मक युगात तणावमुक्त जीवन जगण्यासाठी संगीत निश्चितच लाभदायक आहे.
६.वैश्विक स्तरावरील औद्योगिक क्षेत्रासाठी सुध्दी संगीत फायदेशीर ठरु शकते.
७.वैश्विकीकरणाच्या भव्य दिव्य गदारोळात भारतीय संगीत टिकवून ठेवणे गरजेचे आहे.

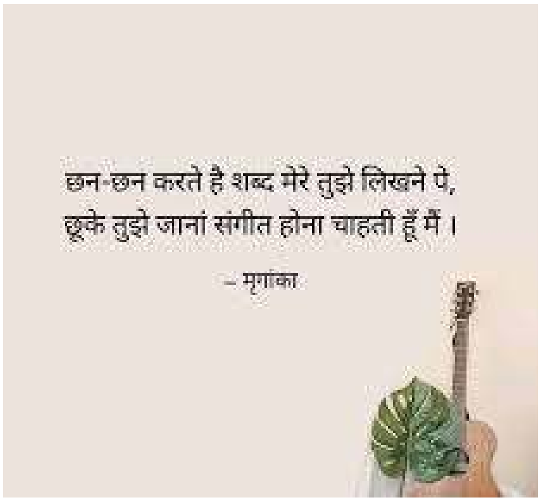

संदर्भ–

१. संगीत का योगदान मानव जीवन के विकासमें– डॉ. उमेश शर्मा
२.निबंध संगीत– एल. एन. गर्ग
३.संगीत चिकित्सा–डॉ. सतीश वर्मा
४.संगीत मासिक– एप्रिल १९७५
५.संगीतायन–सीमा जोहरी
६.संगीत कलाविहार मासिक– जुलै २०१०

Noor

Dr. Sunil Kumar Navin
Principal,
Nabira College, Katol.
sunil.navin@rediffmail.com

It was only the last week of March and the vast bare blue sky was pulsating with heat. As Sarika and Noor stepped out of T. N. B. College after their classes, they covered their faces with scarves to mitigate the sun's glare. Hardly had they reached the main gate, Noor was surprised to find Arif, her brother waiting at the college entrance gate.

'Hurry up and sit on the bike, father asked me to bring you early.' Arif said huskily.

'Anything serious?'

'Yes, you will know yourself at home. No more questions, please.' He quipped and raced his bike homewards.

'Bye! Sarika, see you tomorrow,' Noor waved her hand at her friend still puzzled to know why it was so urgent for sending Arif to take her home from the college.

Her home was located at Urdu Bazaar, not very far away from the college. It took her only ten minutes to reach and both of them loved to walk the distance to and fro talking and jesting on the way. Sarika too lived only a few houses away from hers.

As they reached home, Arif asked her to enter the house from the rear gate. She was amazed to find the front portion of the house decked with colourful tents with white sidings all around and a few neighbouring uncles moving around. As she was still in the rear passageway, a strong flavor of Rogan mutton being cooked struck her nose. Her wonder grew all the more to find many neighbouring aunts sitting in her bedroom gossiping and smiling.

'Oh, Noor has come,' cried Naseema Begum, who she fondly called aunt.

Fatima Begum, her mother came rushing and kissing her forehead asked, 'Get ready soon, my child.'

'Will anyone tell me what's happening? Why this rush?'

'My child, people from your would be groom's side have come to see you. Till morning none of us had any idea of this. But when you left for your college, I heard your father talking long with someone on phone. And soon he broke the news that guests would arrive at about 1 pm.' She paused and added, 'Your brother and uncle had to run here and there for making the necessary arrangements we could. You are my lucky child, beta, perhaps to get this nice offer. Do you know the boy is an Executive in his father's soap industry? Himself an engineer earning not in thousands, but in lakhs. Allah has heard my prayers, child. Would you get ready soon, my child?'

Fatima Begum's eyes shone sparklingly with joy.

'O my God!' cried Noor. 'I'm still studying, Ammi. I haven't completed my graduation even, you know. How can I think to marry now? What would happen to my dream? Haven't I told you several times that I want to become a college teacher?' She shrugged her shoulder in despair and spoke

helplessly. She continued to persuade her mother as best as she could, 'No, no, I won't get ready and I plead you to ask Abbu to send the guests away and say I'm not interested in marriage. Is it okay, Ammi?' She blurted impatiently and beads of perspiration glistened on her forehead.

'Are you mad to say so? Who in our families has gone beyond matriculation, tell me? You have been allowed this much. Besides, don't you know your father, child? Once he decides, can anyone dare change him? For Allah's sake, get ready. Don't argue dear. Don't invite any trouble? Moreover you can't get a better offer. And where is any need for you to work when your husband will earn so much. What a great thing dear child, what a great thing! Life of a queen!' Begum Fatima became hysterical to get such a lucrative offer for her daughter.

As Fatima was trying to convince her daughter, in came Rashid, Noor's father.

'Why, aren't you ready yet? Half an hour has passed since you have come from the college. Guests are waiting to see you. They have got an evening train. Hurry up!' Rashid said and turned to join his guests in the hall. But before he left, Begum Fatima beckoned him to a corner and whispered something.

With grotesque eyes he looked at Noor and ignoring her feelings said brusquely, 'I will explain you later how in a hurry this visit was arranged. Get ready immediately and appear in the hall with tea cups for the guests, is that fine? Rashid sternly gave the command more with his eyes than with his tongue and returned to the hall.

Helpless Noor felt like crying but had no courage to protest and go against her father. She cursed her fate to be born in a family where a girl's feelings and sentiments had no value and respect. No voice of hers! Her mind roved to how for centuries a woman particularly of her race had been confined within four walls and treated no better than merely an object to gratify men's lust, rear children and remain bound to the wheel of drudgery – cooking, washing, mopping the floors… Educated or uneducated, all had the same fate. 'Shit!' she muttered softly.

Sluggishly she came with tea cups, wished salam aleikum and served the guests with tea. She sat demurely across the centre table in a chair.

'Anything you would like to question?' Rashid asked the guests.

'No, no, what question needs to be asked. No, not at all. She is a college going girl. What can we ask her?' Dazzled at Noor's beauty Farooq rose and put a fat wad of currency notes and a gold ring as shagun (an auspicious thing) in her hands and asked her, 'Beta, you might leave.' He had bought the gold ring in a hurry assuming that he might need it if the girl came to his expectation.

Allah had perhaps taken a special care to build her form. She was tall, slender and strikingly elegant. She was milky fair. Big eyes with kohl, sharp nose and long dark hair made her extremely attractive. Besides, in her embroidered pink dress she looked no less than a Zannat's hoor. Farooq could not have desired more in a girl for his son. The only thing missing on her face was the natural radiance and glow which commonly adorns the girl of her age. She looked pensive.

'May be she wasn't at all prepared for this surprise,' Farooq thought.

And when she left, Farooq joyfully embraced Rashid and said, 'We are now in relations.'

'What's this, Noor? Ever since you have been betrothed, smile has forgotten your way. You look so solemn and morose. Thinking of poor Salim, perhaps, isn't it?' Sarika teased her friend next day during the leisure period in the college.

Noor had been in Salim's love for quite some time. He was a distant cousin studying medicines abroad. It was Noor herself who had told Sarika about her love. She had been dreaming to marry him someday after she had done her masters. No calls, nothing, before marriage.

Noor felt tickled at her friend's question, shrugged her shoulder in utter despair and a little later to please her friend spread her lips in a broad smile.

'Is that okay? Badmash.'

'But where is the erstwhile radiance in it? It seems you have borrowed one to please me.'

'Where from should I bring it, tell me, when it is all happening against my will? The pity is I can't even tell anybody about my love for Salim. It would have been too early. Who would have thought Abbu would surprise us all this way? I feel perplexed and don't know what to do. How can I face him who vowed to marry me? He assured me sincerely that he would either marry me or remain a bachelor? O my Allah! I find my wit unhinging and unsettling, my friend.'

Noor was like a painting drawn by an artist in her sad agitation and caught in the coils of circumstances fighting a losing battle.

'Should I talk to your mother? She might understand your plight and convince your father to find a solution.' Sarika said with grave concern.

'I don't think it will work. My Abbu is a headstrong man with old ideas. It is like moving a rock to bend and change him from his stance. Moreover, he won't allow anyone to come between him and his decision. I know him well.'

Noor felt trapped like a bird in a cage. She could, of course, flutter her wings only to get her feathers damaged by the bars.

It was in her cousin's marriage Noor first saw Salim. At the very first glance he appeared quite amiable with his polished demeanour. He was fairly tall, with a noble face and bearing. It was rumoured that after returning from abroad he would set up his own hospital.

Salim was looked at with great admiration by the girls who were of marriageable age as well as their parents who thought he might show interest in them. But he showed his interest in none except Noor. Having a long look at her without being observed from a distance, he fell for her exquisite beauty and felt a sudden crush. In order to have a word now with her he helped himself with a silly excuse, 'If you don't mind, will you, please, bring me a glass of water from inside the house. I feel so thirsty.' It wasn't difficult for Noor to understand the gentleman's intention and with a gentle smile quipped, 'Why, you can have the whole tanker of it; it is kept outside at the gate.'

Her jest did not offend him. On the contrary, it increased his admiration for her.

'Fine, sorry to trouble you. It should have occurred to me,' he said tapping his forehead with his hand and moved away. 'Wait, wait, there isn't any tanker outside, I was jesting. I am bringing water for you.'

She said before he moved away from the scene.

'Thank you so much for the trouble,' Getting the glass of water Salim thanked her and continued, 'To be precise, asking for water was just an excuse for initiating a talk, which, I think, you too might have understood. I had long heard about you from a friend and someday wished to talk to you personally. From his talk itself I grew fascination for you. What I find is more than what I had imagined. By the way I should introduce myself to you that I have been pursuing medicines in the US. Next year I will be back to India. Presently, I will stay for a few more days here and then leave for the States. May I have the pleasure of seeing you sometimes till I am here, please?

Noor wasn't ready for all this. She said hesitatingly, 'I don't know what it is like in your family, but here my Abbu is very strict particularly about girls. He won't allow my coming to meet you. My brothers also will abhor.'

'Well, can you spare some time in your college then? I would like some more talks with you.'

Noor nodded her head coyly in approval, for by now, she herself had felt a little drawn to him. She didn't want to desist him from meeting her in the college.

In a week's time they met not less than ten times and one day as they were still chatting under a sprawling tamarind tree, Salim rose at his feet and bending a little said with all seriousness, 'May I propose to seek your hands in marriage after I return from the US next year?'

Noor was taken aback at this sudden proposal of marriage. She blushed. Though drawn towards him and wanting very much to say a loud yes, she was at her wit's end to comment anything at the moment. It was as if she had been dreaming with open eyes. She stared with eyes fixed at him and said, 'Presently I don't know what to say. I'm none to decide my marriage. I am still studying. Besides, this is something the elders in the family are supposed to settle.'

A seemingly cold response from Noor didn't surprise Salim at all. She was perhaps right in her own way. His admiration for her grew still further.

'Okay, I will send my father to your family with the proposal when the time is propitious. But for the moment I solemnly declare in the name of Allah, 'I'll marry you or never.'

Noor couldn't believe what she heard. She was overtaken by her feminine sentiments. Instead of speech tears took the charge of her tongue. Was there any need of four sacred words in response 'I Love You Too'?

That night Noor decided to forgo her dinner and confining herself in her room cried the whole night till her eyes had got swollen. She didn't expect that she would be engaged without a warning. Her dream to marry Salim collapsed like a castle of cards.

In the morning as she stood before a mirror she was horrified to see her grotesque face. She washed her face clean and the first thing she decided to do was to whatsapp Salim a message.

Dear Salim,

I am mortally pained to write the first and the last message to you. It is often said that history repeats itself. In my case, it is worse than was expected. It all happened without any one of us had any idea. Yesterday only I have been betrothed to

Aslam who I have never seen or heard. Once in the past, Akbar, the Great came between his son, Salim and his love. And now my father suddenly found me a groom. I couldn't protest either. It happened like the flash of lightning without a warning. I was brought from the college and was presented before some unknown guests. They found in me a suitable bride for Mr. Farooq's son and it was all over in just a blink of an eye. I have nothing more to tell you but to forget me like a bad dream. You will find girls many times more beautiful than me. The girl you marry must consider herself proud and lucky. I, on my part, will keep your solemn words like a priceless treasure deep in the recesses of my heart.

Your Unfortunate

Noor

As she concluded the letter, some vain drops of warm tears washed the screen of her tablet. Afterwards she cried silently for some time in her bed and cursed the day she was engaged. Hardly had she soaked her tears with a corner of her dupatta, she got Salim's reply.

Dear Noor,

May Allah bestow peace and happiness upon you, dear. You are, indeed, what your name stands for. You are a chosen child of Allah. Nowadays when children are turning against their parents, you have the celestial nobility in you that you are an obedient child. I would have been really lucky to get you as my soul mate, but everyone is not so blessed. I will have to content myself with your sweet memories. I will remain to pray to my Allah to grant me your company if not in this life, at least in the next one. May you remain blessed as ever!

Your poor

Salim

A couple of months later Noor was married to Aslam Sheikh. The marriage was a pompous one. The presence of the MLA, Mr. Hukumdeo Narayan Singh and local ward commissioners was the highlight of the function. When the Kazi asked her whether the nikah with Aslam was acceptable, she missed her beat and took a longer than usual time to nod her head. Hundreds of people present there blessed the couple with Amen.

Aslam brought a jewellery box and a large bouquet of red rose and jasmine flowers to mark the first night. As he closed the door shut behind him, a fear numbed and paralyzed Noor. He sat in a corner of the bed and was amazed to find her weeping.

'You are weeping? Has anyone offended you?'

'No, none,' she said meekly.

'Why are you crying then? Do you feel nervous or you are afraid of me?' Aslam asked very politely.

There wasn't any reply. He thought Noor might have heard or read some strange stories of brutality regarding the first night.

Trying to console her and dispel some imagined fear from her mind, he continued, 'My dear Noor. You need not worry and be afraid of me. I won't like to vex you at all. Sleep peacefully. You look tired. The night's rest will refresh you indeed.'

The story of the first night continued even after ten days and as Aslam would shut the door behind, Noor would shrink to a

corner and begin to weep and would not allow him near her. He lost his patience one day and asked, 'Aren't you happy with this marriage? It seems something bothers and pesters your mind. Tell me if you can.'

Encouraged by his decent behavior and kind words she wiped her tears and began with difficulty, 'You are indeed a gentleman or you might have chosen to crush me as people do with a flower.' She paused and took some breath to continue, 'I didn't want to marry so early. But couldn't protest either. When people from your side came suddenly one afternoon to see me, I pleaded with my Ammi to send them away. She was too excited with your annual income as if I were to marry with currency notes.'

'Is that all or something else troubles you?' Aslam was sure that such a petty matter couldn't keep the bride away from her groom. 'Feel free and open your heart.'

'This marriage is against my wish. I love someone else.' She mustered courage and said plainly.

Aslam was shocked to hear what Noor said. He didn't want any further details of the man Noor was in love with. Asking about him would have tormented her indeed which he didn't like.

'Why didn't you refuse then?'

'I didn't have courage to protest and go against my father. It happened as if in a flash. I wasn't at all prepared for what happened and allowed any time to ponder over. Moreover it would have created a great turmoil in the house. I couldn't speak much and silently allowed things to take course.'

'Oh! I see. Our parents still live in the old fashioned world without realizing that times have changed.'

He came out of the room and paced the floor for sometime in great agony and agitation. He lighted a cigarette to unburden his mind and also to see what he could do about it.

Half an hour later he again shut the door behind him and coming close to her said with a heavy heart, 'Noor, You are exquisitely beautiful. Fortunate must be the man who claims your love. Anyway, don't get panicked and disturbed. You live for a few months peacefully without any fear in this house. Don't let my parents sense that we are not living like husband and wife. I will occupy the same room with you, but you need not fear. I won't like any gossip about our relations. A few months later I will find some pretext to divorce you and I will feel happy to arrange your marriage myself with your love. You can depend upon my words.'

As Aslam was assuring her dignity and protection, she was overwhelmed with his honest concern and suddenly erupted a fountain of tears from her eyes which soaked a portion of the bed.

And for himself, Aslam took a solemn vow never to get tricked again by the sacred institution which people call marriage.

प्रेमचंद की कथा – बडे बाईसाहाब और बडे घर की बेटी : विलेषण एवंम वर्तमान प्रसंगिकता

डॉ.संयुक्ता थोरात
सहाय्य डॉ क आचार्य,
ललीत कला विभाग,
रा.तु.म.नागपूर विश्वविद्यालय,
नागपुर.

मुंशी प्रेमचंद ने १८९८ में मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण कर स्थानिय विद्यालय मे शिक्षक नियुक्त हो गए । बि.ए. करने के बाद मुंशी प्रेमचंद शिक्षा विभाग के इंस्पेक्टर पद पर नियुक्त हो गए । मुंशी प्रेमचंद का पहला विवाह उन दिनो की परंपरा के अनुसार १५ साल की उम्र में हुआ जो सफल नही रहा ।१९२६ में इन्होने विधवा विवाह का समर्थन करते हुए बाल विधवा शिवरानी देवी से दुसरा विवाह किया । उनसे तीन संताने हुई श्रीपत राय, अमृतराय और कमला देवी, श्रीवास्तव १९१० मे उनकी रचना सोजे वतन के लिए हमीरपुर के जिला कलेक्टर ने तलब किया तो जीवन की सभी प्रतियां जब्त कर नष्ट कर दी गई इस समय तक प्रेमचंद जवाब राय नाम से उर्दू में लिखते थे उर्दु मे प्रकाशित होने वाली जमाना पत्रिका के संपादक और उनके दोस्त मुंशी दयानारायण निगम ने उन्हे प्रेमचंद नाम से लिखने की सलाह दी इसके बाद वे प्रेमचंद के नाम से लिखने लगा । जन्म ३१ जुलाई १८८० लमही, वाराणसी उत्तर प्रदेश भारत मे हुआ और मृत्यु ८ ऑक्टोंबर १९३६ वाराणसी उत्तर प्रदेश भारत मे हुई । उन्होने कहानी और उपन्यास लिखे । विषय है सामाजिक और कृषी जीवन । व्यवसाय से वह अध्यापक, लेखक, पत्रकार थे । उल्लेखनीय कार्य गोदान, कर्मभूमि, रंगभूमि, सेवासदन, निर्मला और मानसरोवर ।उनकी पहली कहानी संसार का अनमोल रत्न १९६६ में जमाना पत्रिका में प्रकाशित की गयी थी । प्रेमचंद की कहानियॉ इस प्रकार से है पंच परमेश्वर, कफन, नमक का दरोगा, बूढी काकी, नशा, परीक्षा, ईदगाह, बडे घर की बेटी, सुजान भगत, शतरंज के खिलाडी, मताका हृदय, मिस पदमा बलिदान, दो बैलो की कथा तथा पूसकी रात सौत कजा की ।

साहित्यिक विशेषताएँ इनकी रचनाओं मे भारत के दर्शन होते है, मुंशी प्रेमचंद के साहित्य पर गांधीवाद का प्रभाव दिखाई देता है । साहित्य को समाजका दर्पण नही मशाल मे होना चाहिए यह बोलते थे प्रेमचंद ।

प्रेमचंद के लघुकथा साहित्य की चर्चा करे तो प्रेमचंद ने लघु आकार की विभिन्न कथा कहानियॉ रची है । इनमे से कुछ लघु–कथाओं मे कश्मीरी सेब, राष्ट्र का सेवक, देवी, बंद दरवाजा व बाबजी का भोग प्रसिध्द है ।

बडे घर की बेटी – प्रेमचंद

बेनीमाधव, सिंह गौरीपुर गॉव के जमीदार और नंबरदार थे । उनके पितामह किसी समय बडे धन धान्य संपन्न थे । गांव का पक्का तालाब और मंदिर जिनकी अब मरम्मत भी मुश्किल थी, उन्ही की कीर्ति–स्तंभ थे । कहते है, इस दरवाजे पर हाथी झूमता था, अब उसकी जगह एक बुढी भैस थी, जिसके शरीर में अस्थि पंजर के सिवा और कुछ शेष न रहा था, पर दूध शायद बहुत देती थी, क्योंकि एक न एक आदमी हॉडी लिए उसके सिर पर सवार ही रहता था । बेनीमाधव सिंह अपनी आधी से अधिक संपत्ती वकीलों को भेट कर चुके थे । उनकी वर्तमान आय एक हजार रूपये वार्षिक से अधिक न थी । ठाकुर साहब के दो बेटे थे । बडे का नाम श्रीकंठ सिंह था । उसने बहुत दिनों के परिश्रम और उद्योग के बाद

बी.ए. की डिग्री प्राप्त की थी । अब एक दप्तर मे नौकर था । छोटा लडका लाल बिहारी सिंह दोहरे बदन का, सजीला जवान था । भरा हुआ भुखंड, चौडी छाती । भैस का दो सेर ताजा दूध वह उठ कर सबेरे पी जाता था । श्रीकंठ सिंह की दशा बिलकुल विपरित थी । इन नेत्र प्रिय गुणों को उन्होने बी.ए. इन्ही दो अक्षरों पर न्योछावर कर दिया था । इन दो अक्षरो ने उनके शरीर को निर्बल और चेहरे को क्रांतीहिन बना दिया था । इसी से वैद्यक ग्रंथो पर उनका विशेष प्रेम था । आयुवैदिक औषधियों पर उनका अधिक विश्वास था । शाम—सबेरे से उनके कमरे से प्राथ: खर ल की सुशिली कर्णमधुर ध्वनी सुनायी दिया करती थी । लाहौर और कलकत्ते के वैधों से बडी लिखा—पढी रहती थी ।

श्रीकंठ इस अंग्रेजी डिग्री के अधिपति होने पर भी अंग्रेजी सामाजिक प्रथाओं वे विशेष प्रेमी न थे । बल्कि वह बहुधा बडे जोर से उसकी निंदा और तिरस्कार किया करते थे । इसी से गाव में उनका बडा सम्मान था । दशहरे के दिनों मे वह बडे उत्साह से रामलीला मे संमलित होते और स्वयं किसी न किसी पात्र का पार्ट लेते थे । गौरीपुर मे रामलीला के कही जन्मदाता थे । प्राचीन हिंदु सभ्यता का गुणगान उनकी धार्मिकता का प्रधान अंग था । सम्मिलित कुटूंम्ब में मिलजुल कर रहने की जो अरूचि होती है, उसे वह जाति और देश दोनो के लिए हानिकारक समझते थे । यही कारण था कि गांव की ललनाएं उनकी निंदक थी। कोई — कोई तो उन्हे अपना शत्रु समझने में भी संकोच न करती थी । स्वयं उनकी पत्नी को ही इस विषय मे उनसे विरोध था । यह इसलिए नही कि उसे अपने सास ससूर, देवर या जेठ आदि से घृणा थी, बल्कि उसका विचार था कि यदि बहुत कुछ सहने और तरह देने पर भी परिवार के साथ निर्वाह न हो सके, तो आये दिन के कलह से जीवन को नष्ट करने की अपेक्षा यही उत्तम है कि अपनी खिचडी अलग पकायी जाये ।

बडे भाई साहब — प्रेमचंद

सारांश :—

लेखन प्रेमचंद ने इस पाठ में अपने बडे भाई के बारे मे बताया है कि उम्र मे उनसे पॉच साल बडे थे परंतु पढाई मे केवल तीन कक्षा आगे । लेखक स्पष्टीकरण देते हुए कहते है ऐसा नही है की उन्होने बाद मे पढाई शुरू की बल्कि वे चाहते थे की उनका बुनियाद मजबूत हो इसलिए एक साल का काम दो—तीन साल मे करते यानी उनके बडे भाई कक्षा पास नही कर पाते थे लेखक की उम्र नौ साल थी । और उनके भाई चौदह साल के थे । व`लेखक की पूरी निगरानी रखते थे जो की उनका जन्मसिद्ध अधिकार था ।

बडे भाई स्वभाव से बडे अध्ययनशील थे, हमेशा किताब खोले बैठे रहते । समय काटने के लिए वो कॉपियों पर तथा किबताब के हाशियों पर चित्र बनाया करते, एक चिज को बार—बार लिखते । दूसरी तरफ लेखक का मन पढाई मे बिलकुल नही लगता । अवसर पाते ही वो हॉस्टल से निकलकर मैदान में खेलने आ जाते । खेलकूद कर जब वो वापस आते तो उन्हे बडे भाई के रौद्र रूप के दर्शन होते । उनके भाई लेखक को डॉटते हुए कहते कि पढाई इतनी आसान नही है, इसके लिए रात—दिन ऑख फोडनी पडती है । खून जलाना पडता है, तब जाकर यह समझ मे आती है । अगर तुम्हे इसी तरह खेलकर अपनी समय गॅवानी है तो बेहतर है कि घर चले जाओ और गुल्ली—डंडा खेलो । इस तरह यहॉ रहकर दादा की गाढी कमाई के रूपए क्यों बरबाद करते हो ? ऐसी लताड सुनकर लेखक रोने लगते और उन्हे लगता की पढाई का काम उनके बस का नही है, परंतु दो—तीन घंटे बाद निराशा हटती तो फटाफट पढाई — लिखाई की कठिण टाईम टेबिल बना लेते, जिसका वो पालन नही कर सकते । खेलकूद के मैदान मे उन्हे बाहर खिंच ही लाते । इतने फटकार के बाद भी वो खल में शामिल होते रहे ।

सालाना परीक्षा मे बडे भाई फिर फेल हो गए और लेखक अपनी कक्षा मे प्रथम आए । उन दोनो के बीच अब दो कक्षा की दूरी रह गयी । लेखक के मन में आया की वह भाई साहब को आडे हाथो ले परन्तु उन्हे दु:खी देखकर लेखक ने इस विचार को त्याग दिया और खेल—कूद मे फिर व्यस्त हो गए । अब बडे भाई का लेखक पर ज्यादा दबाव ना था ।

फिर सालाना परीक्षा मेब डे भाई फेल हो गए और लेखक पास । बडे भाई ने अत्याधिक परिश्रम किया था और लेखक ने ज्यादा नही । लेखक को अपने बडे भाई पर दया आ रही थी । जब नतीजा सुनाया गया तो वह रो पडे और उनके साथ लेखक भी रोने लगे । पास होने की खुशी आधी हो गयी । अब उनके बीच केवल एक दर्जे का अंतर रह गया । लेख को लगा यह उनके उपदेशो का ही असर है की वे दनादन पास हो जाते है । अब भाई साहब नरम पड गए । अब उन्होने लेखक को डॉटना बंद कर दिया । अब लेखक के मन में यह धारणा बन गयी की वह पढे या ना पढे वे पास हो जायेंगे ।

एक दिन संध्या समय लेखक होस्टल से इस कन कौआ लूटने के लिए दौडे जा रहे थे तभी उनकी मुठभेड बडे भाई से हो गयी । वे लेखक का हाथ पकड लिया और गुस्सा होकर बोले कि तुम आठवी कक्षा मे भी आकर ये काम कर रहे हो । एक जमाने में आठवी पास कर नायाब तहसीलदार हो जाते थे । कई लीडर और समाचारपत्रों संपादक भी आठवी पास है । परन्तु तुम इसे महत्व नही देते हो । उन्होंने लेखक को तजुरबे का महत्व स्पष्ट करते हुए कहा कि भले ही तुम मेरे से कक्षा मे कितने भी आगे निकल जाओ फिर भी मेरा तजुरबा तुमसे ज्यादा रहेंगा और तुम्हे समझाने का अधिकार भी । उन्होने लेखक को अम्मॉ दादा का उदाहरण देते हुए कहा की भले ही हम बहुत पढ—लिख जाए परन्तु उनके तजुरबे की बराबरी नही कर सकते । वे बिमारी से लेकर घर के काम काज तक मे हमारे से ज्यादा अनुभव रखते है । इन बातों को सूनकर लेखक उनके आगे नत—मस्तक हो गए और उन्हे अपनी लघु का अनुभव हुआ इतने में ही एक कनकौआ उनलोगों के ऊपर से गुजरा । यूँ कि बडे भाई लम्बे थे इसलिए उन्होने पतंग की डोर पकड ली और होस्टल की तरफ दौड कर भागे । लेखक उनके पिछे पिछे भागे जा रहे थे ।

बडे भाई साहब कहानी का उद्‌देश

बडे भाई साहब कहानी मे प्रेमचंद जी ने बाल मनोविज्ञान का विश्लेषण किया है । यदि उन्हे उपदेश दिया जाए तो वह उनकी उम्र के विरूध्द होता है । क्योंकि बाल मन की इच्छाओं को दबाया जाता है । मन मार कर अच्छा बनने की कोशिश हमारे स्वाभाविक जीवन मे गतिरनोध उत्पन्न कर देता है । इसीलिए बडे भाई साहब छोटे भाई के मार्गदर्शन के अंतर्गत अपना विकास नही कर पाते है । कहानीकार यह सिध्द करना चाहा है कि बचपन में पढाई के साथ साथ खेलकूद भी आवश्यक है । तभी स्वास्य व्यक्तित्व का विकास हो सकता है । इच्छाओं को दबाना कुंठा पैदा करता है । कर्तव्य पालन और आदर्श स्थापित करने के चक्कर में सामान्य जीवन की दिनचर्या को नही बदलना चाहिए ।

लेखक ने बडे भाई साहब के माध्यम से शिक्षा पध्दति के उन दोषो का भी वर्णन किया है जो बच्चों को किताबी कीडा बनाते है और जीवन के व्यावहारिक ज्ञान से अलग रखते है । बडे भाई साहाब तोता रहते विद्या के कारण बुद्‌धी का विकास नही कर सके । एक अच्छी शिक्षा पध्दति में पढाई के साथ — साथ खेलो का भी महत्व होना चाहिए । बुद्‌धी के साथ—साथ व्यक्तित्व का विकास भी आवश्यक है ।

बडे भाई साहाब कहानी शिर्षक की सार्थकता :—

बडे भाई साहब कहानी में के आधार पर बहुत ही सार्थक व उचित है । कहानी के मुख्य पात्र बडे भाई साहाब है, जो अपने छोटे भाई से केवल पाच साल बडे है । वे अपने छोटे भाई के प्रति

जिम्मेदारी समझते है और उसका सही मार्गदर्शन करना चाहते है । इसीलिए वे अपनी बाल मन की इच्छाओं को भी देते है और हर समय पढते रहते है । ताकि छोटा भाई उनका अनुशरणकर सके । लेखक के यह बताने का प्रयास किया है कि बडा भाई उम्र, अनुभव और कक्षा में बडा है । इसीलिए वह छोटे को समझना, डॉटनाद्व उपदेश देना अपना कर्तव्य और अधिकार समझता है । छोटे भाई पर उसका प्रीााव भी पडता है । पर वह बडे भाई के उपदेशों का पालन नही कर पाता । पूरी कहानी मेब डे भाई साहाब का ही हर जगह पूरी तरह प्रभाव है । तथा लेखक अपने उद्देश को बडे भाई साहाब के माध्यम से कहने मे सफल हुआ है ।

निष्कर्ष :–

प्रेमचंद विश्व प्रसिध्द साहित्यकार है । इसमे दोराह नही है । साहित्य प्रकार मे एक मैलिक प्रकार नाटक भी है और देवेंद्रराज अंकुर जी ने कहानी का रंगमंच इस अनोखी बात की शुरूवात की जो आजतक चल रही है, उसमे प्रेमचंद के ''बडे भाई साहब'' का पूरे भारत मे लगभग हर नाट्यसंस्था या विश्वविद्यालय ''कहानी का रंगमंच'' के रूप मे प्रस्तुतिकरण किया गया है । प्रेमचंद की यह कहानी आज के परिवेश की कहानी का आभास कराती है । आज २१ वी सदी में हर जगह बच्चों को शिक्षा के स्पर्धा मे धकेला जाता है और जीवन के अर्थ और आनंद से दूर रखा जाता है । प्रेमचंद की दूर दृष्टि सराहनीय है ।

उसी तरह ''बडे घर की बेटी'' इस कहानी से आज के जीवन परिवेश के दर्शन होते है । आजकल हर कोई अपनी खिचडी अलग पकाना चाहता है और पका रहा है ।

संदर्भ सूची :–

१) प्रेमचंद भारतीय हिंदी के लेखक – विकिपिडिया
२) प्रेमचंद की लघुकथाए (कथा कहानी) (bharatdarshan .co.nz)
३) studyrankers.com/201
४) hindikunj.com/2020/01

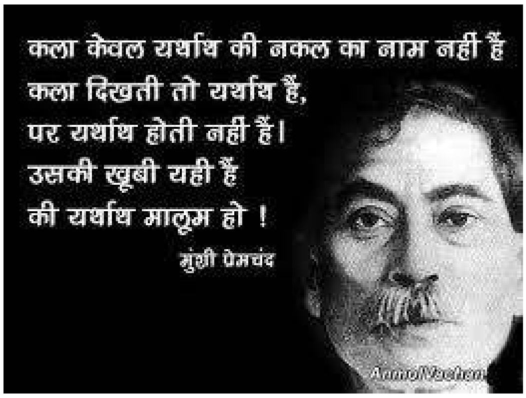

तमाशा लोककलेत स्त्री कलावंताचे योगदान

सहा. प्रा. जगन्नाथ के. इंगोले
संगीत विभाग–महात्मा ज्योतिबा फुले
महाविद्यालय, अमरावती
भ्रमणध्वनी क्र. ९७६५७४८५९८
ईमेल – jkingole1973@gmail.com

महाराष्ट्रातील लोकप्रिय लोककला प्रकारात तमाशा हया कला प्रकाराचा प्रथम क्रमांक लागतो. समाजाचे रंजनासह प्रबोधन करणे हे महत्वपूर्ण कार्य या लोककलांनी केले आहे. महाराष्ट्रातील सर्व कलाप्रकांराच्या सहयोगातून निर्माण झालेली लोककला म्हणजे तमाशा होय. तमाशाच्या रंगभूमीवर सादर होणारी लावणी हे शृंगारीक गीत रसीकांच्या मनाला भुरळ पाडणारे आहे. तरी तमाशा हा कलाप्रकार ख–या अर्थाने एक परिपूर्ण कलाकृति ठरते. या कलेच्या रंगभूमीवर गायण, वादन, नर्तन, अभिनय हास्य विनोद हया सर्वांचा मेळ होवून एक सशक्त लोककला प्रकाराचे सादरीकरण होत असते.

तमाशा या लोककलेनी एक दिर्घ कालखंड समाजाचे मनोरंजन करुन अफाट लोकप्रीयता प्राप्त केली आहे. या कलेनी महाराष्ट्राच्या लोककलेला नावलौकीक मिळवून देऊन सातासमुद्रापलीकडे कलेचे सादरीकरण केले. या रंगभूमींनी अनेक कलावंतांना मान ' सन्मान प्राप्त करुन दिला असून तमाशा ह्या लोककलेत स्त्री कलावंतांनी दिलेले योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण आहे. त्यांच्या भरीव योगदानामुळेच हि रंगभूमी लोकप्रीयतेचा उच्चांक गाठ शकली हे नाकारता येत नाही.

तमाशाची उत्पत्ती –

तमाशा हा शब्द फारसी असून त्यांचा अर्थ प्रेक्षनिय दृश्य, नाटय लिला, आनंद खेल, मजाक, स्वांग करतब असा होत असल्याचा उल्लेख मिळतो तसेच शाहीर ह्या रचनाकारासाठी वापरला जाणरा शब्द सुध्दा 'शायर' या परकीय शब्दातून मराठीत आला असल्याचे दिसून येते कारण तमाशा ह्या कलाप्रकाराची जडण–घडण इ.स. १६८० ते १७०७ ह्या कालखंडात होवून या काळात महाराष्ट्रात औरंगजेब या मुघल सैनिकांच्या छावण्या होत्या. त्या सैनिकांचे मनोरंजन करण्यासाठी या लोककलेचा वापर करण्यात आला असल्याचे दिसून येते. त्यातुनच पुढे या कलाप्रकारात शृंगारीक नृत्य व स्त्री नृत्य कलाकारांचा सहभाग करण्यात आला आसावा.

तमाशा कलेच्या उत्पत्तीचा काळ सातवे शतक असावे असे मत वि. का. जोशी यांनी गाथा सप्तशती या ग्रंथात म्हटले आहे. तर अनंत फंदी यांनी शाहिरी वाङमयाचा नादात्मक प्रकार म्हणजे तमाशा होय असे सांगून सातव्या शतकाच्या शेवट व आठव्या शतकाची सुरुवात हा तमाशाचा उत्पत्ती काळ सांगीतलेला आहे. प्रबोधकार ठाकरे यांनी तमाशा कलेची मिमांसा करतांना तमाशा हा शब्द संत नामदेवाच्या काळातील असून लोकरंजन व लोकशिक्षणाचे साधन असल्याचे मत मांडून या कलेचा ''खेळ तमाशे'' अस उल्लेख होत असल्याचे सांगीतलेले आहे. लोक साहित्याचे अभ्यासक प्रभाकर मांडे यांनी लोकरंगभूमी या ग्रंथात तमाशा रंगभूमी लोकनाटयाच्या रंगभुमीतून जन्मास आले. असे मत मांडले आहे.

तमाशा रंगभूमीवर स्त्री प्रवेश –

तमाशा या कलेचा इतिहास पाहता तमाशाच्या रंगभुमीवर हि स्त्री कलांवंताना प्रवेश नव्हताच, या कलाप्रकारात स्त्री भुमिका सुध्दा पुरुषच स्त्री वेश परिधान करुन करित असे. त्याकरीता 'नाची' किंवा 'नाच्या' नावाचे पात्र निर्माण करुन त्या पात्राकडून

शृंगारिक अभिनय व कवने लोक रंजनासाठी सादर करुन घेतल्या जात असे. या रंगभूमिवर स्त्री कलावंताचा प्रवेश होईपर्यंत 'नाचे पोरे', हेच पात्र स्त्री कलांवतांची भूमिका करीत होते.

या रंगभूमीवर स्त्री कलावंताचा प्रवेश इ. स. १८१८–१८१९ या काळात धोडुंबाइ खडकीकरीन ही कोल्हाटी आणि सोनूबाई परिट या दोन स्त्री कलावंतांचा तमाशात सर्व प्रथम प्रवेश मानला जातो. परंतु तमाशा कलेच्या अभ्यासकाच्या मते सन १८९५ मध्ये तमाशा फडात दाखल झालेली पवळाबाई हिवरकर ही तमाशातून रंगभूमीवर नाचलेली प्रथम दलित स्त्री कलांवंत मानतात. त्यानंतर तमाशा फळात कळवातानी नायकीनी, तवायफ, देवदासी, मुरल्या ह्या समाजाने बहिष्कृत केलेल्या वर्गाच्या स्त्रीया नृत्याचे काम करीत होत्या. पवळा, हिवरकर यांच्या प्रवेशाने तमाशा फडात जोम भरल्याने या अनुकरणातून सन १८९८ नंतरच्या काळात शिवासंभा यांच्या फडात रेणुका, भंगारी, गेनवा, ताई परिंचेकरीन, चंद्रा तसेच राम जोशी यांनी बयाबाई या स्त्री कलांवतांना आपल्या फडात प्रवेश दिला. अशा प्रकारे या कालखंडात स्त्री कलावंतांचा प्रवेश होवून तमाशाला बहर आला होता.

तमाशा लोककलेत वेगवेगळे प्रयोग नेहमीच होत गेले असल्याने ही रंगभूमी एक सशक्त प्रयोग शाळा ठरते कारण उघडयावर चालणार तमाशे पुढील काळात थियटर मध्ये होवू लागले, मुंबई शहर सन १८५३ पिला हाऊस प्ले हाऊस शिवनी डिलाईट रोड, नायगांव येथे स्थायिक थिएटर निर्माण होऊन तमाशा कलाप्रकारात एक वेगळी दिशा मिळाली. त्यातुनच पुढे स्त्री कलांवंताची मागणी वाढली. याच काळात तमाशा भाऊ बापू नारयणगावकर यांनी अनुसया, मुक्ताबाई व विठाबाई यांना प्रवेशीत केले. याच काळात बकुळा इस्लामपुरकर, विमल जळगावकर, कलावती येवलेकर, जोहराबाई जळगांवकर, लिला गांधी, यशोदाबाई वाईकर, लिलाबाई वाईकर इत्यादी या क्षेत्रात नावलौकीक प्राप्त केला असल्याचे दिसते. अशा प्रकारे तमाशा क्षेत्रात स्त्री कलांवतांनी प्रवेश घेवून आपल्या कलेच्या जोरावर तमाशा कलाप्रकाराला अधिक लोकप्रीय करण्यासाठी प्रयत्न केले.

स्त्री कलावंतांचे योगदान –

कलेच्या प्रातांतच नव्हे तर कोणत्याही सार्वजनिक प्रसंगी स्त्रीयांना प्रवेश नव्हता अशा काळात पवळा हिवरेकर यांनी तमाशा फडात प्रवेश घेवून रंगभूमीवर नृत्य करणे एक क्रांतीकरक पाऊल ठरले. लोकनिंदेची परवा न करता तीने घेतलेला निर्णय धाडसीपणाचा असून लोककलेच्या दृष्टीने परिवर्तनीय ठरला. कारण तिच्या प्रवेशामुळे तमाशा फडात नवचैतन्यच निर्माण होवून या कलेला अधिक लोकप्रियता प्राप्त झाली. तमाशाच्या रंगभूमिवर स्त्री कलांवतांनी केलेले नृत्य तिच्या ओठातून गायली जाणारी लयबध्द लावणी, त्यावर समर्पकपणे केलेला अभिनय, स्त्रीचे लावण्य या सर्व कला गुणांचा परिणाम होवून रसिक श्रोत्यांचे पाय रंगभूमीकडे वळले. या काळात तमाशा लोककलेला अधिक गतिशिलता प्राप्त झाली होती. या घटनांमुळे तमाशा फडात स्त्री कलावंतांचा प्रवेश महत्वपूर्ण ठरतो.

समाज मनाची, कुटुंबाची चिंता न करता केवळ वितभर पोटासाठी व कलेची उर्मी जीवंत ठेवण्यासाठी या स्त्रीयांनी तमाशा कलेसाठी आपले संपूर्ण आयुष्य अर्पण केले आहे. समाज व्यवस्थेने बहिकृत म्हणून टाकलेल्या या स्त्रीयांनी कलेसाठी जिवापाड कष्टकरित ऊन, पाऊस, वा–याची तमा न करता केवळ रसिक जनांच्या मनावर अधिराज्य गाजविले आहे. तमाशा सम्राज्ञी विठाबाई नारायणगावकर या स्त्री कलांवतानी इ.स. १९६८ च्या भारत चिन युध्दाच्या वेळी आपल्या सैनिकांचे मनोधैर्य उंचावे म्हणून नेफा आघाडावी जावून आपली कला सादर केली. तिने आपल्या देशासाठी दिलेले हे योगदान तमाशा कलेच्या इतिहासात अजरामर ठरते. तसेच आपल्या कलेचे अप्रतीम सादरीकरण करुन अफाट लोकप्रियता मिळवून देणा–या विठाबाईंनी या कलेला राजप्रतिष्ठा मिळवून

दिली. तिच्या योगदानामुळेच तमाशा कलेला इ.स. १९३३ मध्ये राष्ट्रपती सुवर्ण पदक प्राप्त झाले. हे पारितोषिक प्राप्त करणारी पहिली महिला तमाशा कलावंत ठरते. याच कलावंतानी नव्याने नावारुपास आलेल्या नाटय व चित्रपट सृष्टीत आपले अमुल्य योगदान दिले आहे. आपल्या जिवनातील व्यथा, वेदना बाजुला सारुन या कलावंतांनी मराठी तमाशा लोक कला प्रकाराला वैभवाच्या शिखरावर पोचविण्यासाठी फार मोठे योगदान दिले असल्याचे दिसते.

निकर्ष —

महाराष्ट्रात तमाशा हा लोककला प्रकार लोकप्रिय असून या कलेत स्त्री कलावंताची महत्वपूर्ण भुमिका आहे. त्यांच्या अथक परिश्रमामुळे ही कला विकसित झाली आहे, त्यांनी या लोककलेसाठी दिलेले योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण ठरते.

संदर्भ —

१. तमाशा लोक रंगभूमी — रुस्तम अचलखांब, सुगावा प्रकाशन पुणे (२००६)

२. लोकरंगभूमी — डॉ. प्रभाकर मांडे — मधुराज पब्लिकेशन प्रा. लि. पुणे (२००७)

३. लोकसाहित्य — डॉ. पुरुषोत्तम काळभूत विजय प्रकाशन नागपूर

४. मराठी लोकनाटय तमाशा कला आणि साहित्य नामदेव व्हटकर — अजय प्रकाशन, कोल्हापूर

५. रुप आणि परंपरा — डॉ. मंगेश बनसोड अबे मारिया पब्लिकेशन पुणे (२०१२)

६. आंबेडकरी शाहिरी एक शोध — डॉ. कृष्णा किरवळे, नालंदा प्रकाशन पुणे (१९९२)

तमाशा सम्राज्ञी विठाबाई नारायणगांवकर — खुशाल खडसे, नेहा प्रकाशन, नागपुर

Philosophical contribution of Rashtrasant Prayers for National Integration

Prof. Bhavik Maniyar
Bharsingi
veduminu@gmail.com

Abstract :

Tukdoji Maharaj was a noble self realized saint. His early life was full of Sadhana both spiritual and yogic exercises. He spent much of his early life in the deep jungles of Ramtek, Salburdi, Ramdhighi and Gondoda. Even though he was formally not much educated, his metaphysical spirit and potentiality was of very high order. His devotional songs permeate full spirit of devotion and moral values. His Khanjeri, traditional musical instruments was unique and his style of playing it was unparallel. Tukdoji stressed much on the congregational prayer wherein all the people irrespective of their religion, could participate. His prayer system is really unique and matchless in the world. He claimed that his congregational prayer system could be bound to bind the masses in the chain of brotherhood and love. In this paper specially focused on his contribution in national integration by his prayres.

Keywords:- prayer, gramgeeta, humanity

Introduction : Rashtrasant Tukdoji was born in a remote village, viz. Yawali in Amravati district of Maharashtra (India) on 30th April 1909 in the poverty-ridden family. He completed his primary education at Yawali and Warkhed. The name of this great man was Manik and father's name Namdeo. He was born (1909) in Ingle family (surname). His father was a very poor tailor. He was never interested in taking the education, instead he would like to sit with the people in temples and sing the songs. He learned the art of playing "khanjiri" (an instrument of about 6 inches diameter with the diaphragm of thin animal skin, played by one of the palms and held in other). Manik accepted the great saint of Varkhed Shri Adkoji Maharaj as his Guru. Manik would amuse the people by singing his own instant compositions on the rhythm of khanjiri. In early life, he came in contact with many noble saints. Samartha Adkoji Maharaj showered love on him and graced him with yogic power. He was bachelor; however, his life was dedicated for the services of the masses irrespective of caste, class, creed or religion. He was all the while absorbed in spiritual pursuits. He critically observed the nature of the people and channelized them for the cause of their upliftment. He had self realized vision and throughout his life, taught the lessons for the purity of hearts and malice for none. In 1935 Tukdoji organized a Maharudra Yojna on the hills of salburdi where more than

three lakhs of people came to participate. After this Yojna, his fame spread far and wide came to be respected throughout Madhya Pradesh. In 1936 he was invited by Mahatma Gandhi to his Sewagram Ashram where stayed a month. Thereafter Tukdoji started mass awakening through cultural and spiritual programmes and plunged ahead long into the national freedom struggled in 1942.

Musical contribution of Tukdoji Maharaj

"Mani Nahi Bhaav, Mhane Deva Mala Pav, Deo Bajarcha Bhaji pala Nahire"

"You have not made up your mind to give up your ego, and you want that God should bless you, why ? Do you think God is like vegetables available in any market." This is one of the most popular bhajans (holy song) of Great saint Tukdoji Maharaj . He came extremely popular due to his "easy to sing" kind of bhajans for the villagers. Mahatma Gandhi used to call him for meeting and he would like his bhajans very much. Manik was named as "Tukdoji" by his Guru, the name which he very much like. Tukdoji Maharaj entered the independence movement at that time and instigated people to participate in the struggle for independence. He wrote the bhajans of patriotic meaning, that created awakening in the villagers. He wrote the volumes of "Gramgita" a book that became bible for the villagers. Rashtrasant used to sing the devotional songs, however, with the passage of time, he impressed the masses that God is not only in Temples, Churches or Masjids, and he is everywhere. His powers have no limits. He advised his followers to follow the path of self realization. He firmly opposed the priesthood and propagated the eternal values and universal truth. His Literary contribution is also immense and of high order. He has composed both in Hindi and Marathi three thousand Bhajans, two thousand Abhangas, five thousand ovis and contributed more than six hundred articles on religious, social and national aspects and on formal and informal education. Rashtrasant a self illuminating star and a dynamic leader of divert actions. He was well known for many arts and skills. In the spiritual field, he was a great yogi, and in cultural field, he was a treat orator and musician.

Composition of '*Gramgeeta'* On the basis of his experience and insight the Rashtrasant composed 'Gramgeeta' wherein he exposed the present realities and gave a new concept of development for rural India. In 1955 he was invited to Japan for World Religions' Parliament and World Peace Conference. Both the Conferences were inaugurated with the tone of Khanjeri of Rashtrasant Tukdoji with great appreciation from thousands in the audience present in the Conference Hall.

Establishment of Gurukunj Ashram :

After his release from the jail, initiated social reform movements and struggled hard against blind faith, untouchably, superstition, cow-slaughter and other social evils, He established his Gurukunj Ashram at Mozari village about 120 Km from Nagpur, where constructive programmes were implemented with active

participation of his followers. At the very entrance of the Ashram he inscribed its motto as-

"Sabke liye khula hai mandir yaha hamara"

'Open to all is the temple of ours'

'Welcome to all from every creed and religion'

'Welcome to all from home and abroad'

After the dawn of independence, Tukdoji concentrated his full attention to rural reconstruction works and organized many kinds of camps for constructive workers. His activities were impressive and of great national interest. Dr. Rajendrea Prasad, Prasident of India showered love on him respectfully bestowed the honor 'Rashtrasant' in one of the great gatherings at Gurukunj Ashram. Thereafter people widely called him 'Rashtrasant' with great respect.

Conclusion : Rashtrasant Tukdoji used to work in person with the villagers in road construction, village-sanitation and other activities. His writings both prose and poetry are full of devotion and the spirit of humanity. His nobility was of very high order. His selfless devotion and dedication are .bound to teach the lessons for the generations to come. He was a good social reformer. He did the work of reformation through counseling the people, delivering inspiring lectures, with the help of 'Khanjeri' in Bhajans. He lashed the ominous rituals in his bhajans. His bhajans casted a good effect on the development of villages .A person who learnt only up to second standard, took a good interest in freedom movement. He tried to root out social injustice, untouchability, superstitions and stressed development of youth, cleaning of villages, development of farming by his khanjeri Bhajans and Abhanga. Tukdoji maharaj was a shining star in the tradition of the saints of our great India.

References:

(1) Kadawe Raghunath : Rashtra Sant Samagra, Gadhya 4 Wangmay, Shri Gurudev Prakashan Mission 2000.

(2) Dr. Shendare Namita : Rashtrasant Stridarshan, Om Prakashan, Nagpur March 1999.

(3) Dr. Kale Akshay Kumar : Rashtrasant Tukdoji Maharaj Vyakti, Ani Wangamay Visabooks, Nagpur 2008.

(4) Dr. Kumar : Method and technique of Social Research, Educational Publisher, Agra 7 Edition 2007.

(5) Sarvanavel P. Research Methodology, Kitab Mahal, Alahabad 1992.

(6) Dr. Shendare Namita : Rashtrasant Stridarshan, Om Publication, Nagpur, March 1999.

संगीत : एक स्रोत सच्चिदानन्द का

डॉ. रोज़ी श्रीवास्तव
व्याख्यता संगीत (कंठ)
राजकीय महारानी सुदर्शन महाविद्यालय
बीकानेर।
ई–मेल:– dr.rosy7sur@gmail.com
मो. नं.:– ९४१४४३०९४१, ०९७८४७२८९८१

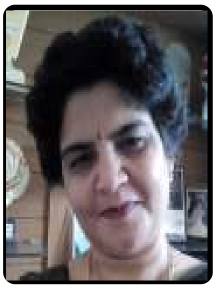

''सच्चिदानन्द'' भारतीय परिप्रेक्ष्य में इतना गूढ़ एवं रहस्यमयी विषय है कि वेदों, पुराणों, उपनिषदों, धर्म–दर्शन ग्रंथों और कलाओं के चिन्तन का मुख्य केन्द्र बिन्दु रहा है। भारतीय वाग्ङ्मय में सच्चिदानन्द के अस्तित्व और उसकी प्राप्ति को लेकर अनेक परम्पराओं एवं विचारधाराओं की एक लम्बी कड़ी है। इस विषय का हर पहलू इतना गुंथा हुआ है कि किसी एक को अलग–अलग करके देखना या किसी एक के बारे में आंकलन करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। साधारणतया ''सच्चिदानन्द'' –सत्+चित्+आनन्द है, जिसका चित्त सत् जुड़ा है वही आनन्द स्वरूप है। देखा जाये तो इन तीन शब्दों में सम्पूर्ण सृष्टि समायी हुई है। हमारा प्रारम्भ यहीं से है तो अन्त भी यहीं पर।

अनादिकाल से कुछ बुनियादी प्रश्न मनुष्य के मन मस्तिष्क में सहज ही उठते रहे हैं जैसे सृष्टि की रचना कैसे हुई? किस उद्देश्य की सिद्धी के लिये रची गयी? किस कर्ता की रचना है? इसके संचालन के पीछे कौन से नियम हैं? मनुष्य कहाँ से आया, कहाँ जायेगा? सृष्टिकर्ता से उसका क्या सम्बन्ध है? मृत्यु के पश्चात् क्या मनुष्य का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा? देखा जाये तो मानवीय प्रयत्न का एकमात्र उद्देश्य इन प्रश्नों का उत्तर ढूंढ़ना है, ताकि मनुष्य जीवन को अधिक सार्थक, सफल एवं सुखी बनाया जा सके। अनन्त काल से मनुष्य स्थायी सुख, शान्ति की तलाश में भटक रहा है। यह परम सुख कब, कहाँ और कैसे मिले यह कह पाना अत्यन्त कठिन है। इन सभी जिज्ञासाओं के, प्रश्नों के उत्तर ढूंढ़ने हेतु इस बात पर विचार करना आवश्यक हो जाता है कि हम जिस रचना के अंश है, जिस सृष्टि का हम एक अहम् हिस्सा है, उसका मूल उद्गम क्या है? वैज्ञानिकों, भूगोल शास्त्रियों, दार्शनिकों तथा धार्मिक संत फकीरों आदि सभी मत मतान्तरों में सृष्टि के मूल तक या प्रथम कारण तक पहुंचने का प्रयत्न किया है। इस सृष्टि के दो पक्ष है– लय एवं प्रलय। लय अर्थात् कम्पन, जीवन, श्वास। प्रलय अर्थात् बिना लय के कम्पनहीन, जीवनहीन, श्वासहीन। सृष्टि के मूल में ''एकोऽहम्–बहुस्यामी'' की मान्यता को स्वीकारा है अर्थात् चिदाकाश में स्पन्दन के फलस्वरूप गति पैदा हुई जो नादोत्पत्ति का कारण बनी। इसे यूं कहें कि समस्त क्रियाकलापों का मूल स्पन्दन है, कम्पन है, आन्दोलन है। संगीत, उस प्रथम मूल गति को दर्शाता है जो सृष्टि का उद्गम है। इसी गति से ध्वनियाँ प्रस्फुटित हुई। सृष्टि से पूर्व एक आद्वितीय सत् ही था। इन सभी व्यवहारों के मूल मे ंकम्पन है जो प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से अनेक तत्वों एवं अनुभूतियों में आभासित होता है। हमारे ऋषि मुनियों, मनीषियों, विद्वजनों ने अपने आत्मानुसन्धान से प्रेरित होकर उसक मूल तत्व को या कहे कि परम तत्व को आत्मसात् किया है। भारतीय परम्परा के परिशिष्ट पर सम्पूर्ण सृष्टि नादाधिष्ठ है जो सम्पूर्ण सृष्टि का चैतन्य है वह अखण्ड, आद्वितीय एवं आनन्दमय है। हमारे शास्त्रों में भी ''नादाधिनम्तोजगत:'' की मान्यता को स्वीकारा है। पुराविदों के अनुसार संगीत की उत्पत्ति स्वयंभू परमेश्वर से हुई है। भारतीय संगीत ग्रंथों में ''ओऽम् नाद ब्रह्मणे'' इति मानकर नाद को ही ब्रह्म का रूप माना है। संगीत मनीषियों ने ''नाद रूपो जनार्दन:'' कहकर उसे ब्रह्म तुल्य माना है।

मानव इस सृष्टि की अनुपम एवं सर्वोत्तम

सरचना है। चौरासी लाख योनियों में सबसे उत्तम जन्म मनुष्य का है। बुद्धि; तत्व विवेकशीलता ही इसे दूसरी योनियों से अलग करती है। मनुष्य सोचने, समझने और कार्य करने में पूर्णत: सक्षम है और यही कारण है कि मनुष्य निरन्तर चिन्तन करता रहता है। इस चिन्तन के दो मार्ग हैं या कहें कि दो धारायें है— एक भौतिक या लौकिक, जो सृष्टि के दायरे में सीमित है और दूसरी परमार्थिक या अलौकिक जो सृष्टि के परे है, असीमित है, आध्यात्मिक है, यानि जब हम जगत की सत्ता के सन्दर्भ में जड़ चेतन, लौकिक अलौकिक, आत्मा परमात्मा आदि विषयों का सत्य धर्म के साथ चिन्तन करते हैं तो इन सभी को देखने और इन सभी विषयों के बारे में चिन्तन करने की एक विशेष दृष्टि तात्विकता है, दर्शन है, जो हमारे भ्रमों को दूर करती है, वास्तविकता से रू—ब—रू कराती है, जो हमारे चित्त को सत्य तक पहुंचाती है, उसका आभास कराती है। वही परमानन्द है, वही सर्वोच्च सत्ता है जिससे एकीकार होकर हम आनन्द रूवरूप हो जाते हैं वही ''सच्चिदानन्द'' है।

दार्शनिक पृष्ठभूमि पर यदि संगीत के तात्विक पक्ष का चिन्तन करें तो दर्शन की सभी विधाओ का केन्द्र बिन्दु वेद है। भारतीय संगीत पर दर्शन कहीं न कहीं स्पष्ट छाप रही है। धर्म, ईश्वर, ब्रह्म सत्ता, आत्मा परमात्मा, मोक्ष जैसे सभी पहलू संगीत से गुंथे हुए हैं। वास्तव में संगीत में षड्दर्शनों का समन्वय स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। संक्षेप में देखा जाये तो न्याय वैशैषिक कार्य—कारण सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। इसके अनुसार बिना किसी कारण के कोई कार्य उत्पन्न नहीं होता है। सांगोतिक परम्परा में लय—नाद—श्रुति—स्वर—सप्तक—ठाठ—राग— और राग से सम्पूर्ण संगीत की सृष्टि होती है। इस प्रकार मीमांसा दर्शन में कर्म से धर्म का निरूपण का सिद्धान्त सर्वविदित है। अत: संगीत के माध्यम से उस परमानन्द की प्राप्ति। देखा जाये तो साम गान परम्परा से लेकर अनेक ऋषि मुनि, संत फीकर भक्तिमय पद गाकर अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त हुए। ''योगश्चित्तवृत्ति निरोध:'' योग शास्त्र का मुख्य सूत्र रहा है अर्थात् चित्तवृत्तियों का निरोध कर, मन एवं चित्त को शुद्ध करना। योग साधना की भांति ही संगीत साधक भी मन और चित्त को शान्त कर अपने अन्त:करण में अलौकिक आनन्द को प्राप्त करते हैं। संगीत में स्वर साधना, संयम, श्रद्धा, विश्वास, गुरू तथा आराध्य के प्रति समर्णण, उसकी उपासना ही लक्ष्य प्राप्ति की सीढ़ियां हैं। इसी प्रकार सांख्य दर्शन सत्कार्यवाद पर आधारित है अर्थात् कारण में कार्य आरम्भ से ही विद्यमान रहता है, जैसे तिलों में तेल। संगीत में भी यही सिद्धान्त लागू होता है जैसे नाद के बिना स्वर सम्भव नहीं है। नाद का सदैव वायुमण्डल में ध्वनित होना ही इस तथ्य को दर्शाता है। वेदान्त दर्शन जो भारतीय दर्शन की अमूल्य निधि है, सशक्त परम्परा है, यह ज्ञान तत्व पर आधारित है। श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन से साधक का अन्त:करण पवित्र होता है और वह सांसारिक बन्धनों से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करता है। संगीत साधना इस तथ्य का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। देखा जाये तो प्रत्यक्ष रूप से दर्शन और संगीत का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है परन्तु परोक्षत: इनका सामंजस्य एवं समन्वय नितान्त अद्भूत है। जहां परम तत्व की साधना की पगडण्डी पर दर्शन गूढ़, गम्भीर और चिन्तन प्रधान है, वहीं संगीत रंजक, माधुर्यपूर्ण, रोचक और सरल है। दर्शन मानव मस्तिष्क से सम्बन्ध रखता है वहीं संगीत ह्दय में वास करता है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में धर्म, दर्शन एवं संगीत तीनों की ही नींव आध्यात्म पर टिकी है।

हमारे मनीषियों एवं तत्ववेत्ताओं ने संगीत के सुरों का तात्विक विश्लेषण कुछ इस प्रकार किया है — संगीत में सप्तक 'सा यानि षड़ज पर ही आधारित होता है अर्थात् स+आत्रसा — यह सकार जल तत्वामक है। 'रे'—रेकार अर्थात् रई, जो अग्नि तत्वात्मक है। 'ग' —गकार का सम्बन्ध पृथ्वियात्मक वर्ण है। इसी प्रकार 'म'—मकार परम प्रकाशात्मक सूर्य का प्रतीक

माना है। 'प'—पकार का सम्बन्ध वायु तत्वात्मक है। 'ध'—घकार जल तत्वात्मक है तथा 'नी' – नकार—नइत्रणि अर्थात् यह आकाश तत्वामक है। इसी ध्वनि तरंग दैहिक, दैविक, वैतालादि सिद्धियों को प्रदान करने वाली है। हमारे संगीत विदों ने स्वरों को शरीरस्थ चक्रों से जोड़ा है, जो पूर्णतया आध्यात्मिक और आस्था की नींव पर टिका है। षड़ज—सा ऋषभ गंधार मध्यम पंचम धैवत निषाद। मूलाधार स्वाधिष्ठन मणिपुर अनाहत् विशुद्धिआज्ञा सहस्त्रर्द्ध।। यूं कहा जा सकता है कि शास्त्रानुशीलन में 'सा,रे,गा,मा,पा, धा,नि' सप्तस्वरों की धवन्तिरंग सर्वब्रह्मातमशक्ति स्वरूप है। स्वरों के साथ देवी देवताओं के सम्बन्धों को भी बताया है—षड़ज के देवता ब्रह्मा, ऋषभ के अग्नि, गंधार का गौ, मध्यम के विष्णु, पंचम के चन्द्रमा, धैवत् की सार्थकता अन्य स्वरों को परस्पर जोड़ने में है वहीं निषाद अन्य सभी स्वरों में विलीन होकर सार्थक होता है। पंचतत्व निर्मित हमारा शरीर वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी एवं आकाश तत्व के संयोग से बना है। मनुष्य शरीर के लक्ष्य को ''पुरूषार्थ—चतुष्टय''की धारणा से जोड़ा है—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। योग वशिष्ठ रामायण में संगीत को पंचम पुरूषार्थ के रूप में अभिज्ञानित किया है, देखा जाये तो संगीत न केवल पंच पुरूषार्थ के रूप में स्थापित है बल्कि चारों पुरूषार्थ की प्राप्ति में भी संगीत की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। संगीत में एकाग्रचित करने की पूर्ण क्षमता है और एकाग्रचित होने के बाद ही मनुष्य आन्तरिक शक्तियों, शरीरस्थ चक्रों को जागृत करने में सफल हो पाता है। संगीत साधना करते वक्त जब साधक स्वर माधुर्य में तल्लीन हो जाये, अपनी सुध—बुध खो दे, बाहरी परिवेश का उसे ज्ञान ही न रहे तभी वह अपने अन्त:करण के अलौकिक आनन्द को, अपने चित्त से उस सत् को जोड़ सकता है जिसका वह अंश है। ऐसी साधना जहां साधक और साध्य दोनों एक दूसरे में विलीन हो जाते हैं वही आनन्द की निष्पत्ति है। यही स्थिति ''ब्रह्मानन्द—सहोदर'' का आभास कराती है मनुष्य की यही स्वानुभूति ब्रह्म की अनुभूति है। यहीं 'ओंकार' की साधना है, जो मन एवं मस्तिष्क को संतुलित कर हमारी आत्मा को परमात्मा तक पहुंचाती है। मनुष्य के मस्तिष्क में स्वाभाविक रूप से ध्वनि के प्रति एक संवेदनशीलता जुड़ी हुई है, जो चेतन अवस्था में हमारे अवस्था में हमारे कानों में गूंजती है और अचेतन अवस्था में कुछ ध्वनि तरंगों के रूप में आभासित होती है, वही अन्तरमण्डल में एक ध्वनि तरंग का संचार करती है। वही साधक के लिये तन्मयता, तल्लीनता या एकाग्रता की अवस्था है। ध्वनि मण्डल इतना प्रभावी और व्यापक होता है जो परमानन्द की चरमसीमा का अनुभव कराता है। विचारों को एकाग्र एवं संयमित कर देह में प्रवाहित ध्वनियों को सुनना और उसके कम्पन से समस्त ज्ञानेन्द्रियों को संगठित करना तथा अपनी ऊर्जा को वश में करना ही नादब्रह्म की उपासना का मुख्य उद्देश्य है। यही स्वध्वनि एवं स्वऊर्जा मनुष्य की सबसे निजी एवं मूल्यवान धरोहर है जो उसे मोक्ष तक ले जाती है। कहा गया है कि शुद्ध विचार, शुद्ध भाव और सात्विक प्रवृत्ति से संगीत साधना की जाये तो वह व्यक्ति वास्तव में मोक्ष पद को प्राप्त होता है। कबीर के अनुसार 'नाद' मनुष्य अन्तरात्मा की ध्वनि है—'इस घट अन्तर अनहद गर्जे, इसी में उठत फुहारा। संत कबीर सुनो भई साधो इसी में सांई हमारा।' श्री कृष्ण की वंशी की स्वर लहरियों में भी ऐसी तल्लीनता अनुभव की गयी। के, वासुदेव शास्त्री के अनुसार देहपिण्ड यानि मानव शरीर में बिना आघात् किये निरन्तर नाद का आविर्भाव हो रहा है जिसे अनाहद कहा गया है। संत फकीरों ने इसे अनहद् वाणी, धुर की वाणी कहा है जिसकी कोई हद् न हो, सीमा न हो, जो अलख अगम और अगोचर है, आनन्ददायक एवं मुक्तिदायक है वही सच्चिदानन्द है। हमारे इन्द्री और मन बाहरी विषयों में असाक्त होने के कारण इसे प्राप्त नहीं कर सकते हैं। डॉ. सुभद्रा चौहान के अनुसार ''भारतीय चिन्तन धारा की एक बड़ी मौलिक विशेषता यह रही है कि सभी विधाओं, कलाओं एवं शास्त्रों

आदि का अन्तिम लक्ष्य आत्मानुभूति माना गया है।'' परात्पर ब्रह्म की अनुभूति, प्रणव की साधना से अथवा नाद की उपासना से ही सिद्ध होती है। सांगेतिक दृष्टि से देखें तो अनाहद नाद उपास्य है और आहतनाद साधान। श्रीमद् भगवद् गीता, वेदों, पुराणों, उपनिषदों में साधाना का मुख्य लक्ष्य, मन एवं बुद्धि निर्मल कर उस पारब्रह्म से तदात्कार होना बताया है। स्वामी तुलसीदास जी ने मोक्ष प्राप्ति हेतु 'नवधा—भक्ति' में इसका विवेचन किया है। 'नाम संकीर्तन' में साध्य या इष्ट अराधना के लिये संगीत को श्रेष्ठ माध्यम बताया है। श्रीगुरू ग्रंथ साहिब में भी संगीत को ही आधार माना है। भक्तिकालीन कृष्ण उपासकों की परम्परा में भी भजनों के माध्यम से संगीत को अपनी आध्यात्मिक साधना का अंग बनाया है जिसमें सूरदास, कृष्णदास, नन्ददास, चतुर्भुजदास, गोंविददास, स्वामी हरिदास आदि मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त संत परम्परा में नामदेव, कबीर, रविदास, मीरा आदि संतों की एक लम्बी श्रृंखला रही है। स्वयं भगवान बुद्ध ने सम्पूर्ण सिद्धान्तों को गीतों की एक लड़ी में पिरो दिया था तथा ''बुंद्धम् शरणम् गच्छामि'' के जाप से जन—जन को जागृत किया। वहीं महावीर स्वामी ने संगीत को ही भक्ति का माध्यम। इस्लाम धर्म में भी चिश्ती परम्परा एवं सूफी परम्परा में संगीत को प्रधानता दी गयी है। प्रसिद्ध सूफी संत इनायत खां के अनुसार 'विश्व में उपासना के जितने भी मत हैं सभी में संगीत को सर्वोत्तम माना है। संगीत उस पूर्ण शान्ति को प्राप्त करता है जो निर्वाण या हिन्दुओं की भाषा में समाधि है।' डॉ. उमर मोहम्मद ने अपनी पुस्तक ''भारतीय संस्कृति पर मुसलमानों का प्रभाव'' में लिखा है कि सूफी फकीरों ने अनाहद ध्वनि को ''आवाज—ए—मुतल्लक''और 'सुलतान—ए—अजकार'' कहा है जो शाश्वत् है। धार्मिक धरातल पर मनुष्य जीवन का अन्तिम लक्ष्य उस सर्वोच्च सत्ता 'सत्—चित्—आनन्द' को प्राप्त करना है। इस अनन्त साधना हेतु सभी ने संगीत को सर्वश्रेष्ठ माना है। भारती संगीत का मूल लक्ष्य ब्रह्माण्ड में बिखरी दैविक ऊर्जा स्त्रोंतों का साक्षात्कार करना एवं ईश्वरीय दर्शन करना है। इसकी सम्पुष्टि में महर्षि याज्ञवलक्य ने स्पष्ट रूप से स्वीकारा है— ''वीणा वादन तालज्ञ: जाति विशारद:। तालज्ञश्च: प्रयासेण मोक्ष मार्ग प्रयच्छति।।'' अर्थात् जो गीत, वाद्य, श्रुति ताल में विशारद होता है वह मोक्ष को प्राप्त होता है। नादब्रह्म के उपासकों ने साध्य की प्राप्ति हेतु संगीत साधाना का सुगम मार्ग प्रशस्त किया है।

निसंदेह भौतिक उत्कर्ष तथा यश प्राप्ति के साथ—साथ आध्यात्मक एवं परम तत्व की प्राप्ति में संगीत की सशक्त भूमिका रही है। भारतीय परम्परा में उत्सव से लेकर उपासना तक संगीत का महत्वपूर्ण हस्तक्षेप रहा है। मनुष्य सांसारिक बन्धनों से मुक्त होने के लिये संगीत साधना से से अपने परम तत्व, अनहद सत्ता से मिलाप कर 'सच्चिदानन्द' को प्राप्त कर सकता है जिसका कि वह अंश है।

Rules & Conditions

1) The journal welcomes articles and other writing materials mainly related to Music, Art & Literature.

2) Stories, Poems, Short Literary Pieces, Proverbs, Anecdotes of good taste may be sent.

3) Articles and writing materials may be sent in Hindi, English and Marathi.

4) Research Articles and other writing material will be published subject to their approval and selection by Editorial Board of the Journal.

5) All submissions should be typed in MS-Word, "KRUTI DEV 050' font should be used and send it in Document as well as PDF format.

6) In all matters related to the publication of the articles and other material the decision of the Editorial Board of the Journal will be final.

:: Contact ::

Prof. Monali Masih

Cell : 9370971222

Mail ID : monalimasih@gmail.com